Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-लोक

७५ नये पैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्दर पढ़िए

तरह तरह की मछलियाँ ३
—कुमारी प्रमिला

घास की क्या बात ८
—सत्यकुमार

सागर में छिपी सरिताएँ १२
—डा. नरेन्द्रमोहन वंसल

बहुउपयोगी केला १६
—नरेन्द्र छाबड़ा

स्ट्रोबोस्कोप २१
—डा. मनोहरलाल शर्मा

आत्महत्याएँ २४
—अनिलकुमार जैन

जन्तुओं के विचित्र दाँत २७
—जगदीशप्रसाद अग्रवाल

हाइड्रोजन की उपयोगिता ३१
—आदित्यगोपाल भिंगरन

धीरे बहो नदिया ३४
—राजेन्द्रप्रसाद खन्ना

अन्य लोक के निवासियों से बातचीत ४०
—डा. शिवगोपाल मिश्र

डीजल इंजन का आविषकर्ता रुडोल्फ डीजल ४२
—केदारनाथ

आश्चर्यजनक करबद्ध कीट मेन्टिस ४५
—डा. त्रिलोक मजूपुरिया

यदि सूर्य को निकट से देखें ५१
—कुलदीप चड्ढा

स्थायी स्तम्भ

विचित्र संसार ३८
वैज्ञानिक उपलब्धियाँ ४६
विज्ञान क्लब ५७
इनाम लो ६१
आपके प्रश्न ६३

अपनी बात

'सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रशासन और शिक्षा क्षेत्र में भारत विश्व को एक सर्वथा नवीन धा[रा] प्रदान कर रहा है'—यह सत्योद्घाटन हा[र्वर्ड] विश्वविद्यालय के सार्वजनिक स्वास्थ्य के प्रो[फेसर] डा. एफ. आर. लीवेल ने किया है।

दिल्ली में सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रशासन [और] शिक्षा सम्बन्धी एक राष्ट्रीय संस्थान स्थापित क[रने] का जो प्रस्ताव पास किया गया है और तदन[न्तर] योजना आयोग ने जो प्रारूप प्रस्तुत किया [था] उसके सूक्ष्म निरीक्षण के लिए हमारे केन्[द्रीय] स्वास्थ्य मन्त्रालय के निमन्त्रण पर फोर्ड प्रतिष्[ठान] ने डा. लीवेल के नेतृत्व में अमरीकी विशेषज्ञों [का] एक दल भारत भेजा था।

भारत की विविध परिस्थितियों का अवलो[कन] करके डा. लीवेल ने उपरोक्त मत प्रदर्शित क[रने] के साथ यह भी कहा कि राष्ट्रीय स्तर पर [ऐसे] संस्थान का सूत्रपात अभी तक किसी देश में न[हीं] हुआ है। डा. लीवेल का विश्वास है कि [यह] संस्थान एक वास्तविक आवश्यकता की पूर्ति करे[गा]।

आशा है कि इस योजना के पूर्ण हो[ने] पर भारत में सैनिक, आर्थिक तथा अन्य कार्य[ों] के लिए स्वस्थ व्यक्तियों का अभाव नहीं रहे[गा]। इस योजना पर लगभग ७७ लाख रु. व्यय [होंगे] और पाँच वर्ष का समय लगेगा।

विज्ञान-लोक इस स्तुत्य सूत्रपात का स्वा[गत] करते हुए इस योजना के यथाशीघ्र सम्पन्न [होने] की कामना करता है।

वर्ष ४ अंक २

विज्ञान लोक

मूल्य
एक प्रति : ७५ नये पैसे
वार्षिक : ६ रुपये

सम्पादक : शंकर मेहरा
प्रकाशक : [illegible] मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह तरह की मछलियाँ

गुरुकुल कांगड़ी

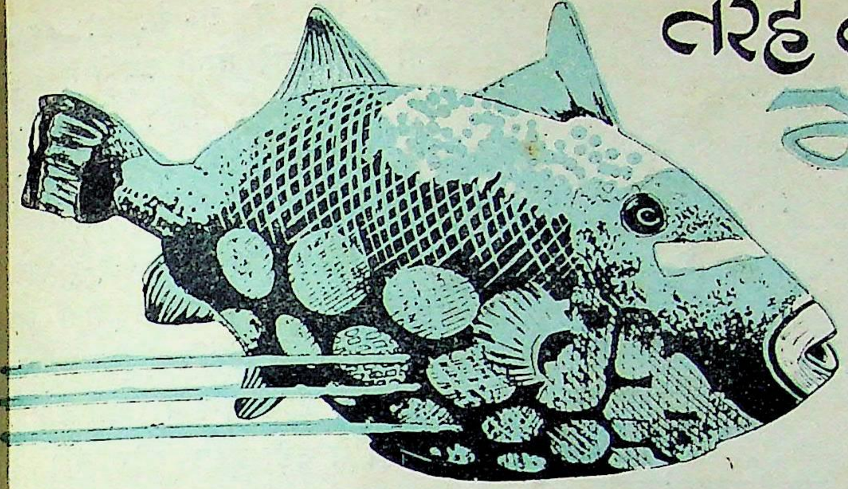

कुमारी प्रमिला

एक शताब्दी पूर्व की ही बात है, तब तक लोगों को यह ज्ञात नहीं था कि सागरों में तनिक गहराई पर तथा कहीं-कहीं कम गहराई पर भी कैसी-कैसी अनोखी मछलियाँ हैं! जब से सागरों में बिजली के केबिल बिछाये जाने लगे तभी से लोगों का—विशेषत: जीव-वैज्ञानिकों का—विचित्र मछलियों से परिचय होने लगा। तभी वे यह जान सके कि सागरों की गहराई में जीवन गुंजित है। उससे पूर्व यही समझा जाता था कि कुछ ही सौ फुट की गहराई के बाद अनन्त अँधेरा और निर्जीवता का साम्राज्य है। तब उन्हें ज्ञात हुआ कि सागर की गहराइयों में भी जीवन है, स्पन्दन है और शोर-गुल भी है।

इन्हीं में कुछ मछलियाँ ऐसी हैं जो 'छोटे मुँह, बड़ी बात' की सार्थक प्रतीक हैं। मूँगे की चट्टानों के निकट ही अधिकतर पायी जाने वाली ये मछलियाँ वास्तव में काफी छोटे मुँह की होती हैं पर इनकी विशेषताएँ छोटी नहीं होतीं। मूँगे की रंग-बिरंगी वाटिकाओं में ये चहकती रहती हैं। अधिकतर तो वातावरण से रंग में रंग मिलाकर आक्रमणकारी से बच निकलती हैं और कुछ मूँगे की खोलों में घुसकर शत्रुओं को धोखा देती रहती हैं। सागर की गहराइयों में वनस्पति इतनी प्रचुर तो होती नहीं जो मछलियों का निर्वाह हो जाए, अत: वहाँ बड़ी मछली छोटी मछली को निगलती रहती है।

प्लेक्टोनेथ (Plectognath) श्रेणी की इन मछलियों के मुँह और आँखें काफी छोटी और दाँत मजबूत होते हैं। किन्हीं के शरीर पर रंगीली-चमकीली चित्तियाँ और धारियाँ होती हैं, किन्हीं की खाल सपाट तथा खुरदरी होती है, तो किन्हीं के शरीर पर पैनी छुरी जैसे काँटे या प्लेटें होती हैं। इनमें से अधिकांश तो उष्ण कटिबन्धीय सागर के जल में रहती हैं। कुछ हिम सागर के जल में भी रहती हैं। वास्तव में इस श्रेणी की मछलियाँ सर्जन फिश (Surgeon fish) एकनथुरिडी (Acanthuridae) के वंश के आधुनिक संस्करण हैं। सर्जन के काम में आने वाले तेज चाकू जैसे पैने काँटे तथा प्लेटोंयुक्त मछलियों के कारण ही इस वंश को सर्जन वंश का नाम दिया गया है। किन्हीं-किन्हीं में वे काँटे पूँछ के दोनों ओर १-१ तथा किन्हीं में सिर पर तथा पीठ पर भी होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

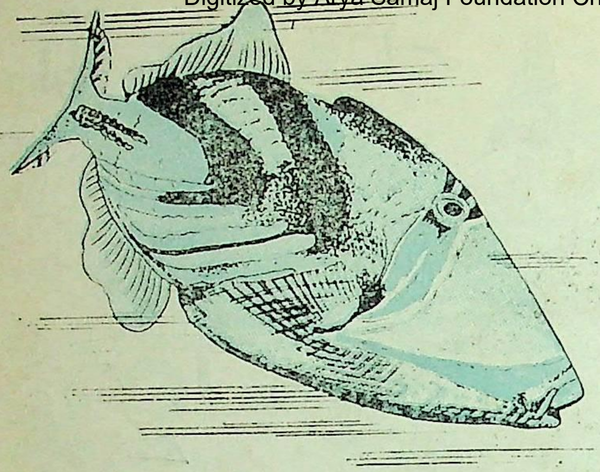

इस ट्रिगर फिश का नाम है हुमुहुमु-नुकुनुकु

वास्तव में वे त्वचा के शल्क (scales) हैं जो सख्त और कँटीले बन गये हैं।

ट्रिगर फिश—इस वर्ग में रिनेकेन्थस एक्युलीटस (Rhinecanthas aculeatus) तथा रिने-रेक्टेन्गुलेरिस (Rhinerectangularis) मुख्य मछलियाँ हैं। इन्हें हुमुहुमु-नुकुनुकु के नाम से पुकारते हैं। इन दोनों में समानता होते हुए भी आपस में पटती नहीं। दाँव लग जाने पर एक दूसरी को गुत्थमगुत्था करती हुई दूर घसीट ले जाती हैं। इन्हें ट्रिगर नाम इसलिए दिया गया है कि इनके सिर, पूँछ तथा पीठ पर जो काँटे होते हैं, उनमें ये अपनी विलक्षण स्नायविक क्रिया से आगे का काँटा खड़ा करके पीछे के काँटे को बन्दूक के घोड़े की तरह सरकाकर सहारे को लगाये रहती हैं। काम पूरा हो जाने पर पुनः उसी स्थिति में ले आती हैं। अतः जब कभी कोई बड़ी मछली इन्हें निगलने की कोशिश करती है तो ये काँटा खड़ा करके उसकी कोशिश बेकार कर देती हैं। इसी प्रकार जब कोई अन्य मछली पीछा करती है तो किसी भी मूँगे के खोल में अपना सिर देकर काँटा खड़ा कर लेती हैं। तब इनका बाहर खिंचना कठिन हो जाता है और आक्रमणकारी हार कर लौट जाता है। ये मछलियाँ प्रा[illegible] २० सें. मी. से ६० सें. मी. ल[illegible] होती हैं। इनके दोनों जबड़ों में [illegible] दाँतों की बाहरी पंक्ति होती [illegible] ऊपर के जबड़े में प्लेटनुमा [illegible] दाँतों की एक भीतरी पंक्ति भी र[illegible] है। पूँछ के दोनों ओर १-१ [illegible] निशान से उन्हें सहज पहचाना [illegible] सकता है। ये मछलियाँ छिछले [illegible] अपेक्षाकृत उष्ण जल में रहती हैं। स्वभाव से बड़ी सुस्त और गति [illegible] मन्द हैं।

फाइल फिश—ऊपरी तौर पर ट्रि[illegible] फिश से मिलती-जुलती यह मछली किंचि[illegible] सँकरे शरीर की होती है। सबसे आगे [illegible] काँटा इसकी आँख के लगभग ऊपर ही हो[illegible] है जबकि ट्रिगर फिश में जरा पीछे को सर[illegible] कर होता है। इसकी पीठ की चित्तियाँ रेति[illegible] (files) जैसी होने के कारण इसे फाइल फि[illegible] कहते हैं। इसके नीचे के अंग पर डैने नहीं हो[illegible]

क्वीन ट्रिगर फिश—यह महारानी (Queen) [illegible] महासागर तथा अतलांतिक महासागर के दोनों [illegible] पायी जाती है

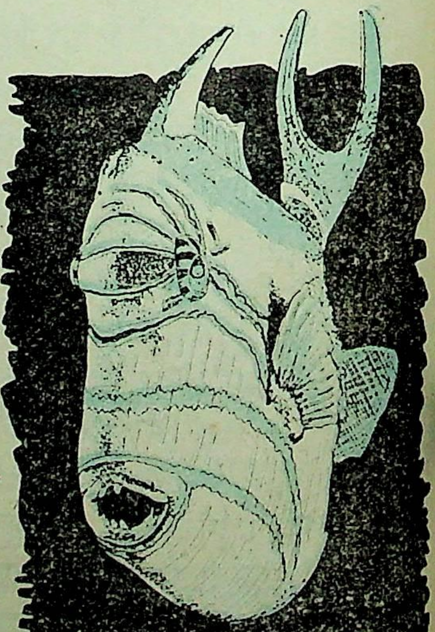

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मछली प्रायः १२ से २५ सें.मी. तक की होती है किन्तु एल्युटेरा-स्क्रिप्टा (Alutera-scripta) नामक मछली अपवादस्वरूप १०० सें. मी. तक की पायी गयी है। इसका मुँह इतना छोटा होता है कि यदि इसे मीनालय में रखा जाए तो इसके खान-पान की विशेष सावधानी रखनी होगी। यह सूक्ष्माकार भोजन ही कर सकती है, वह भी काफी धीरे-धीरे।

पार्कुपाइन तथा बर्र फिश—डायोडन्टिडी (Diodontidae) परिवार की यह पार्कुपाइन मछली एक प्रकार से गुब्बारे जैसी पफर फिश ही है मगर सेही जैसे काँटों से युक्त। वे काँटे सामान्य अवस्था में तो लेटे रहते हैं किन्तु मछली को पानी से बाहर निकालते ही काँटे खड़े हो जाते हैं। बर्र फिश मछली के काँटे अचल रहते हैं। इनको पकड़ने वाले इनकी खाल को सुखाकर, पारदर्शक बनाकर गेंद-नुमा कर लेते हैं और उनमें रंग-बिरंगे लैम्प जलाकर सजावट का काम लेते हैं।

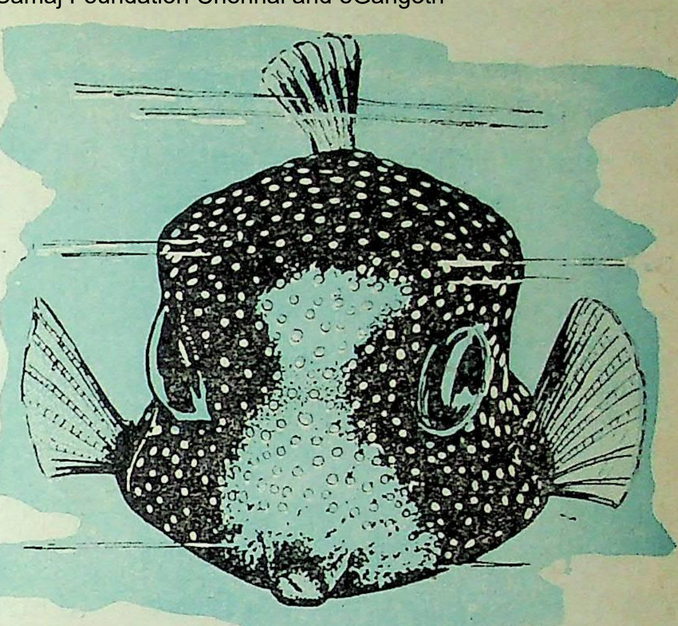

ब्लू ट्रंक फिश—शैशवावस्था में

ट्रंक फिश—ये मछलियाँ ओस्ट्राशियन्टिडी (Ostraciontidae) परिवार की हैं। आकार में ये ऐसी दिखती हैं मानो हड्डी का एक खोल या बक्स हो जिसमें आँख, मुँह आदि के लिए छिद्र रख दिये गये हों। एक ही परिवार के नर-मादा प्रायः भिन्न रंग के होकर बड़ी भूलभुलैया पैदा कर देते हैं। छेड़ने पर ये ऐसा द्रव पिचकारी की तरह छोड़ती हैं जो आसपास के पानी को

ब्लू ट्रंक फिश

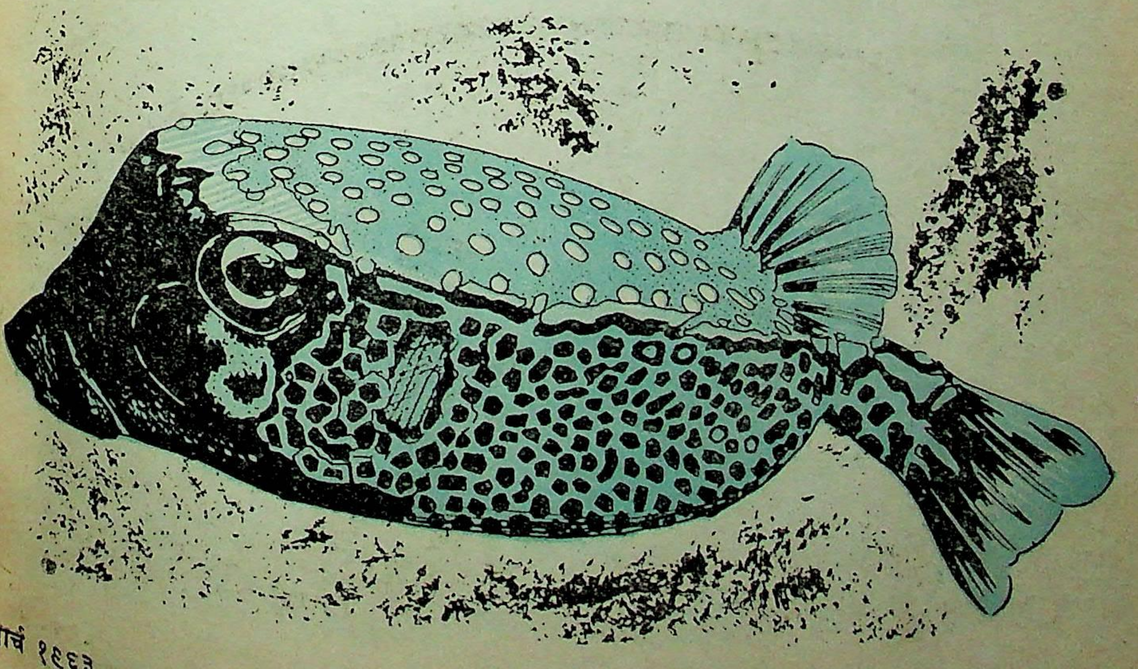

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहरीला बना देता है। अक्सर वह जहरीला पानी अन्य मछलियों के लिए घातक सिद्ध होता है। ये अधिक से अधिक ५० सें. मी. तक की पायी जाती हैं। इनका जहरीला द्रव इनके खाने वालों के लिए कोई बाधा उपस्थित नहीं करता।

पफर फिश—गुब्बारे की शकल की ये मछलियाँ टेट्राओडन्टिडी (Tetraodontidae) परिवार की बड़ी मनोरंजक मछलियाँ हैं। ज्योंही इन्हें पानी से निकालते हैं ये हवा खींचकर गुब्बारे जैसी फूल जाती हैं। फूली हुई अवस्था में इन्हें पुनः पानी में छोड़ देने पर कुछ मिनटों तक तो ये उलटी-पुलटी तैरती रहती हैं ताकि हवा निकल जाए; बाद में प्रकृतिस्थ होने पर ये अपने सामान्य रूप में आ जाती हैं। हवा की भाँति ये पानी भी भर लेती हैं। काँटेदार पफर अर्थात पार्कुपाइन फिश की अपेक्षा इनके मुँह की रचना में यह अन्तर होता है कि पार्कुपाइन के सख्त चोंच जैसे मुँह दाँत जड़े हुए रहते हैं जबकि इनमें कैंची भाँति बीच से दो फाँकों में बँटे रहते हैं इन मांसाहारी मछलियों के परिवार में से भी अधिक उपजातियाँ होती हैं। साधारणतया ये ४५ सें.मी. की होती हैं कि ६० सें.मी. तक की भी पायी गयी हैं। जब गुब्बारा बनकर पानी पर तैरने लगती हैं त इन्हें निगलने की कोशिश उसी तरह बेका जाती है जिस प्रकार पानी में तैरती हुई ए गेंद को मुँह में पकड़ने की चेष्टा। यद्यपि इनमें भी औषधोपयोगी टेट्रोडोटाक्सि (Tetrodotoxin) जैसा विषैला पदा रहता है, तथापि अनेक देशों में, विशेषत जापान में, ये मछलियाँ बड़े प्रिय खाद्य सम्मिलित हैं। किन्तु इन्हें खाने के योग्य बनाने के लिए विशेषतः प्रशिक्षित होना तथ प्रमाणपत्र प्राप्त करना पड़ता है, अन्यथ अज्ञानी लोगों द्वारा इनका प्रयोग ६० प्रति

रेनजानिया नामक महासागरीय सन फिश। इसी जाति की मोला-मोला नामक सन फिश १००० किलोग्राम तक भारी होती है

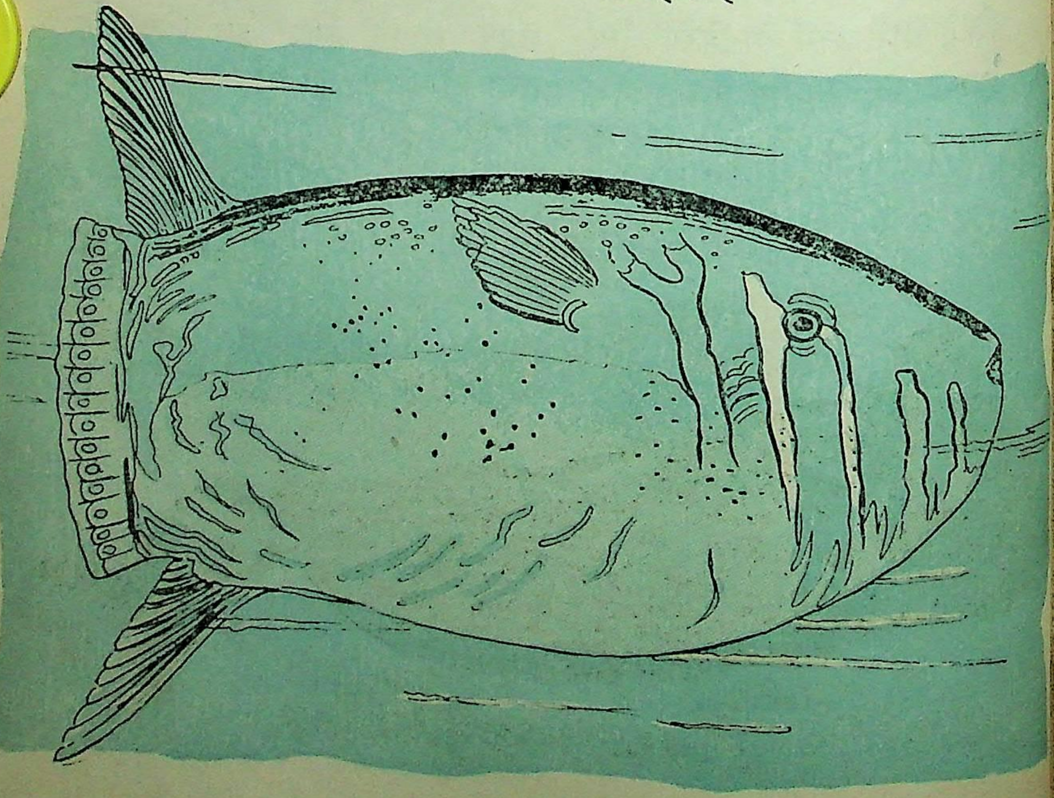

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

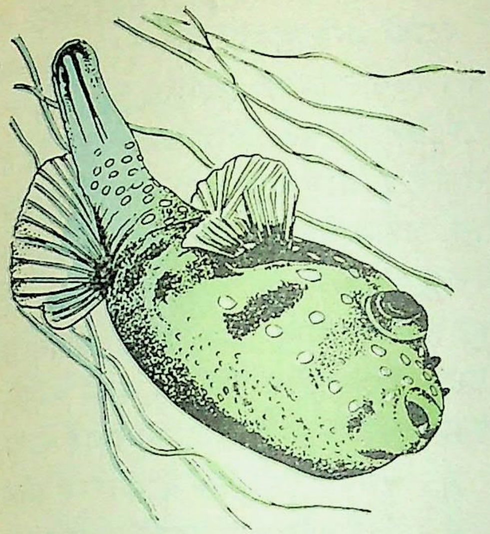

पफर फिश

शत हानिकारक ही सिद्ध होता है। इन्हीं में Sharpnose Puffers अर्थात् नुकीली नाक वाली पफर भी हैं। उनकी नाक सँकरी, नुकीली, कुछ अधिक लम्बी तथा नथुने बड़े सूक्ष्म होते हैं।

ओशन सन फिश—बड़े महासागरों में पायी जाने वाली इन मछलियों को भीमकाय पफर फिश ही समझिए। शिशु अवस्था में तो इनके भी शरीर पर काँटे होते हैं जिनके कारण अपने ही परिवार की बड़ी मछलियों में वे आसानी से नहीं पहचानी जातीं। ये पानी में तेजी से ऊपर-नीचे तैरती हैं। आयु बढ़ने के साथ इनमें सुस्ती भी बढ़ती जाती है, यहाँ तक कि वृद्ध होने पर ये प्रायः किसी किनारे पर डैने फड़फड़ाती पड़ी रहती हैं। इनमें मोला-मोला (Mola-mola) जाति की मछली खासकर विशालकाय होती है। वह ३½ मीटर लम्बी तथा १००० किलो. तक भारी होती है। इस परिवार में कुल तीन ही उपजातियाँ हैं। रेनजानिया टाइपस (Ranzania Typus) ७५ सें.मी. लम्बी और मास्तुरस लेन्स्योलेटस (Masturus lanceolatus) जाति की ३½ मीटर लम्बी होती है। ये मछलियाँ खाने योग्य नहीं मानी जातीं। कारावस्था में ये अधिक जीवित नहीं रहतीं, क्योंकि इन्हें तो स्वच्छन्द विचरने के लिए असीम सागर जल ही चाहिए। इन्हें खाने-खिलाने में विशेष असुविधा नहीं प्रतीत होती, क्योंकि श्वास के जोर से ये मुँह के सामने आयी हुई वस्तु को अन्दर खींच लेती हैं।

सचमुच 'छोटे मुँह, बड़ी बात' वाली ये मछलियाँ स्वयं विचित्रताओं के भण्डार ही हैं।

●

राष्ट्र को अपना
सोना
खून
श्रम
शौर्य
दीजिए
पहले की अपेक्षा आज उसे
इनकी अधिक जरूरत है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घास की क्या बात!

सत्यकुमार

यह घास है: प्रकृति द्वारा मुक्त हस्त से लुटायी जाने वाली निधि, सहज उपलब्ध घास। इसके बिना हमारे पर्वत नग्न हैं, सरित्-किनारे सूने और खेल के मैदान वीरान हैं। घास नहीं, तो कोठी की लान उदास, चरागाह बंजर, और हमारा पशुधन निर्धन है। घास हमारे जीवन के अत्यन्त निकट है। कवियों ने इस पर प्रशस्तियाँ लिखी हैं, इसके मखमली कालीनों ने उनमें कोमल कल्पनाएँ जगायी हैं और उपन्यासकार ने भी अपने उपन्यास में प्रारम्भ और अन्त के बीच, कहीं न कहीं इसे सजाया-सँवारा अवश्य है। वैज्ञानिकों ने घास पर अनन्त प्रयोग किये हैं। घास कहाँ नहीं है? पहाड़ की चोटी हो, सागरतल हो, शुष्क मरुस्थल हो या हिमाच्छादित ध्रुव-प्रदेश हो, घास तो सब स्थानों पर मिलेगी ही।

घास की रचना अत्यन्त सरल है। एक तना और तने के हर जोड़ अर्थात् हर गाँठ पर एक पत्ती, बस। सृष्टि भर की विभिन्न घासों की मूल रचना तो यही होती है। घास में फूल भी होते हैं किन्तु उनका कुछ महत्व नहीं। न तो उनमें चटकदार रंग होते हैं, न कोई गंध ही। वैसे भी फूलों में रंग, रूप और गंध तो परागण हेतु ही कीटों को आकर्षित करने के लिए होते हैं। घास को बढ़ने के लिए इन वस्तुओं की आवश्यकता नहीं। इसके पौधे में लगभग पाँच करोड़ बीजाणु होते हैं। वायु में १३०० मीटर की ऊँचाई तक ये बीजाणु उड़ते-उतराते देखे गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घास के बीजों का प्रसारण अधिकतर तो वायु द्वारा ही हो जाता है। इसके अतिरिक्त, पशुओं के शरीर से तथा हमारे कपड़ों से चिपककर भी ये एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाते हैं। पूर्वकाल में सौदागरों के काफिले के काफिले अपनी अन्यान्य वस्तुओं के साथ घास के गट्ठर भी लिये फिरते थे। उन दिनों गुलाम-प्रथा प्रचलित थी। अतः जिस स्थान पर भी गुलाम बेचे जाते थे, उनके बिस्तर के रूप में घास भी उन्हें देनी पड़ती थी।

वर्षाऋतु घास का यौवन काल मानी जाती है। उस ऋतु में आँखों को हरा ही हरा सूझता है। घास शब्द का अर्थ केवल दूब घास ही न समझें। घास-परिवार में ही गेहूँ, जौ, धान, गन्ना तथा बाँस आदि भी आते हैं, जिनमें घास की ही भाँति एक तना और तने की हर गाँठ पर पत्ती होती है। अनाजों की हरी-भरी बालें पककर पीली होती-होती सूखती हैं और दाने तैयार हो जाते हैं। आदि-मानव भी इस तथ्य से परिचित था। अनाज के रूप में वह इनसे भिन्न-भिन्न खाद्य प्राप्त कर लेता था। हमारे भी भोजन में आज मुख्य रूप अनाज का ही है—कहीं गेहूँ, कहीं चावल, कहीं मक्का तो कहीं ज्वार।

सोचने की बात है कि यदि हम एक समय भोजन न करें तो दूसरे समय सुस्ती क्यों घेरती है? दो दिन खाना न खाएँ तो शिथिलता क्यों पकड़ लेती है? यह सब इसलिए कि शरीर में शक्ति का अभाव आ जाता है और शक्ति भोजन से ही प्राप्त होती है। भोजन में वह शक्ति अनाज से आती है। घास रूप के ये पौधे सूर्य से निरन्तर ऊर्जा और भूमि से पोषक तत्त्व प्राप्त करते रहते हैं। भोजन द्वारा प्राप्त शक्ति ही हमारी समस्त क्रियाओं का संचालन करती है। हमारे प्रत्येक कार्य में—चाहे वह बोझा उठाने जैसा भारी परिश्रम हो चाहे तिनके से दाँत कुरेदने का कोमल कार्य हो, शक्ति खर्च होती ही है।

पशुओं में कितनी शक्ति होती है? वे भी तो घास ही खाते हैं! घास खाकर ही घोड़ा दूसरों को मात खिलाता है। घास खाकर ही गाय हमें दूध देती है और बैल कोल्हू चलाता है। गणना है कि २०० ग्राम घास में इतनी शक्ति रहती है कि एक व्यक्ति डेढ़ घण्टा चल सकता है, दो मिनट सीधी सीढ़ियों पर चढ़ा चला जा सकता है, आधा घण्टा लकड़ी चीर सकता है या तीन घण्टे तक बर्तन माँज सकता है। अनाज के ये दाने, एक प्रकार से घास के बीज ही तो हैं! उनमें घास से चौगुनी शक्ति रहती है। ७०० बीघे का घास का मैदान एक दिन में सूर्य से उतनी शक्ति प्राप्त कर लेगा जितनी एक सामान्य परमाणु बम में रहती है, अर्थात् २०००० टन T.N.T. के बराबर!

घास को भी फूलों का शृंगार चाहिए!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवनी शक्ति के नाते घास तो स्वर्ण से भी अधिक मूल्यवान है। जीवन के लिए यह वायु तथा प्रकाश जितनी ही आवश्यक है। इसकी एक उपयोगिता यह भी है कि यह वर्षा के पानी को अधिक से अधिक जज्ब कर लेती है और उस पानी को धरती में उतारती रहती है। हिसाब लगाया जाए तो वर्षा-जनित बाढ़ें रोकने में यह मानव-निर्मित

यह घास (बाँस) पाँवों के नीचे नहीं, सिर से ऊपर चढ़ती है—ऊँची बहुत ऊँची, ४० मीटर तक ! बढ़ती भी है एक दिन में ४० सें.मी. और इतनी सटी हुई कि तनों के बीच से आप निकल नहीं सकते !

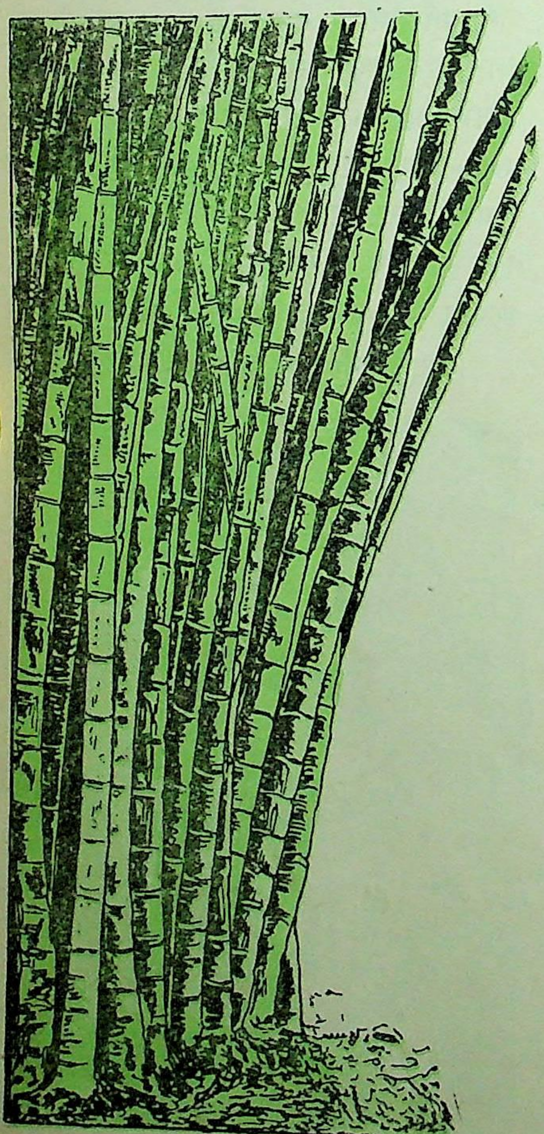

किसी भी बाँध से कम क्षमतायुक्त नहीं। पृथ्वी का १/५ भाग घास से ढँका हुआ है। जहाँ घास है वहाँ के झरनों का पानी मीठा और निर्मल होता है। जिन खेतों में घास अधिक रहती है, उनकी मिट्टी वर्षा में सहज ही बह नहीं जाती। समुद्र तट पर जो लहरों द्वारा जो कीचड़-मिट्टी जमा होती रहती है, घास ही उसे धीरे-धीरे दलदल के रूप में बदलती रहती है। वह दलदल भी समय पाकर सूखता-सूखता उर्वर भूमि-खण्ड बन जाता है। यों, भूमि-निर्माण में भी घास का महत्त्वपूर्ण भाग रहता है।

घास कहाँ नहीं है ? घास आपके पाँवों के नीचे है, घास आपके सिर पर है। जरा अपना हैट (यदि पहनते हैं) तो देखिए घास की तीलियों से बना है, तभी तो इतना हलका है ! बैठने की वह चटाई भी देखिए कितनी हलकी, कितनी साफ है। कमरा बुहारने की झाड़ू हो या डाक बँगले का फूस का छप्पर, घास का ही दौरदौरा तो है। कागज बनता है तो घास से, रस्सी बनती है तो घास से। और, वह बाँस भी तो घास के ही कुनबे का है ! बाँस की उपयोगिता किससे छिपी है ? कागज बनाने में बाँस, औषधीय बंसलोचन में बाँस, मछली-पकड़ने की बंसी में बाँस, मनमोहनी मुरली में बाँस, रेयन कपड़े में बाँस। बाँस के तो पूरे मकान के मकान बनते हैं ! झोंपड़ों का तो आधार-स्तम्भ ही बाँस है। इस बहुउपयोगी बाँस की जननी घास विविध पैकिंग भरने में भी काम आती है। सर्दी में ठिठुरते गरीबों का तो बिस्तर और कम्बल सूखी घास (पुआल) ही है।

बिजली के बल्बों में जो टंगस्टन का तार आप देख रहे हैं, उसकी जगह शुरू-आत में बाँस के तिनके ही थे। है न आश्चर्य ! सन् १९१० तक बाँस के रेशों का कार्बन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

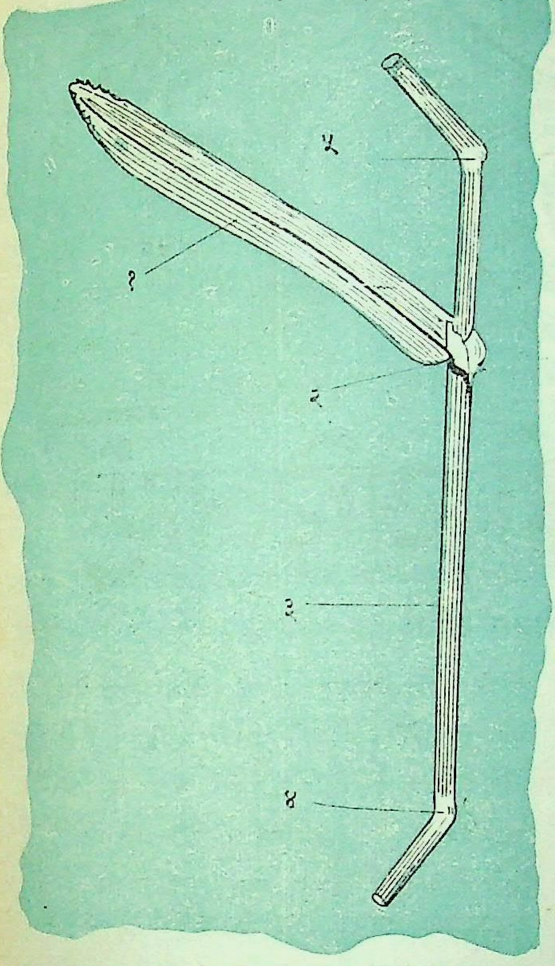

घास को निकट से पहचानिए। ये हैं : १. पत्र-फलक, २. जिव्हिका, ३. आवरण, ४. गाँठ, ५. संधि-स्तम्भ

करण करके बल्बों में उपयोग होता था। प्रसिद्ध वैज्ञानिक एडीसन ने स्वयं प्रारम्भ में अनेकों प्रकार की घास के रेशों का कार्बनीकरण करके कितने ही प्रयोग किये थे, तब कहीं सफलता मिली थी।

पृथ्वी पर न जाने कितने विस्तृत घास के मैदान खेल के मैदानों के रूप में काम आ रहे हैं। घास पर खेली जाने वाली टेनिस तो लान टेनिस के नाम से ही विख्यात है। फुटबाल, क्रिकेट, पोलो तथा हाकी आदि खेलों में घास के मैदानों का ही महत्त्व है। गोल्फ के लिए घास की मखमली कालीन ही पसन्द की जाती है। आज के सुधरे हुए शहरों की जान, बीच-बीच में बनाये गये छोटे-छोटे कुंज तथा वाटिकाएँ हैं। उनकी शोभा घास की हरियाली से ही है। घास पहली ही दृष्टि में हमें नवजीवन का आभास कराती है। घास जीवन का ही प्रतीक है। अनुमान है कि घास की ६००० से भी अधिक किस्में हैं। भू-वेत्ताओं का अनुमान है कि करोड़ वर्ष पूर्व भी भूमण्डल पर घास का साम्राज्य था। आज भी घास पृथ्वी का श्रृंगार है और अनन्त काल तक शोभा श्रृंगार बनी ही रहेगी।

उठो देश के भामाशाहो, दौलत दे दो
उठो किसानो आज, खेत की माँग सजा दो
माँ का कर्ज चुकाना है हम सबको
उठो मजूरो, रात और दिन एक बना दो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

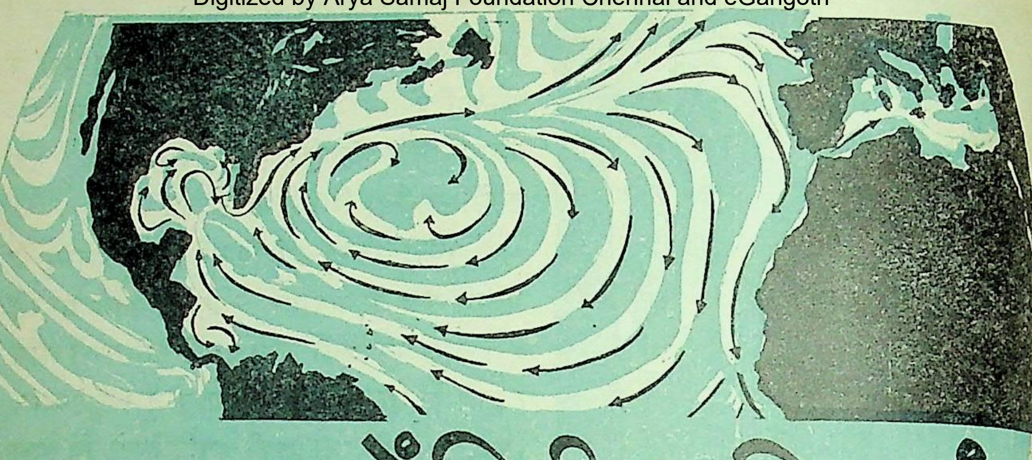

सागर में छिपी सरिताएं

डा. नरेन्द्रमोहन बंसल

कुछ सरिताएँ ऐसी हैं जो न पर्वत से निकलती हैं, न पृथ्वी पर बहती हैं, फिर भी सरिताएँ तो वे हैं ही। उनमें भी कुछ तो इतनी विशाल हैं कि प्रत्येक में पृथ्वी की विशालतम नदी मिसीसिपी जैसी सौ-पचास नदियाँ समा जाएँ! वे सरिताएँ सागरों में ही उपजती हैं, बढ़ती-बहती हैं और अन्ततः सागर में ही समा जाती हैं। वास्तव में इनके समा जाने या अन्त हो जाने जैसा कुछ है भी नहीं। ये तो अक्षय सरिताएँ हैं। साथ ही, सागर में उठते-गिरते ज्वार-भाटे को इनका कोई स्वरूप न समझ लेना चाहिए। दोनों सर्वथा भिन्न हैं। कुछ बातों में तो सागरों तथा उनके तटवर्ती प्रदेशों को विशेष महत्त्व इन्हीं सागर में छिपी सरिताओं के कारण प्राप्त है। उदाहरणार्थ, समान अक्षांश पर ही स्थित अमरीका का उत्तरी भाग और ग्रीनलैण्ड आदि स्थायी रूप से हिमाच्छादित हैं जबकि पश्चिमी यूरोप में ग्रेट ब्रिटेन आदि उस स्थायी हिम-संकट से मुक्त हैं।

इन छिपी सरिताओं को सुविधा के लिए समुद्री धाराएँ (ocean currents) कहेंगे। इनके अधिकतर नाम तो भूमध्य रेखा उन पार्श्वों (उत्तरी अथवा दक्षिणी) से दि गये हैं जहाँ से ये बनती तथा चलती हैं कुछ नाम उन प्रदेशों तथा खाड़ी आदि दिये गये हैं जिन्हें छूती हुई ये बहती हैं उदाहरणार्थ कुछ नाम हैं—उत्तरी भूमध् रेखीय धारा, दक्षिणी भूमध्यरेखीय धा लेब्राडोर धारा तथा गल्फ स्ट्रीम आदि।

सृष्टि के प्रारम्भ से ही इनका अस्तित् है। ये धाराएँ ऐसी घुमक्कड़ हैं कि अखि विश्व में इनकी गति है। इन्हें रोकने वा कोई भी नहीं। समस्त सागरों, महासाग में ये निर्द्वन्द्व विचरती रहती हैं। पृथ्वी क सरिताओं को तो जब कभी अपने मार्ग बदलने पड़ते हैं किन्तु ये धाराएँ इसमें अपवाद हैं। अनुमान है कि लगभग १६ वर्ष में एक बार ये धाराएँ समस्त साग का जल एक-दूसरे में लाती - ले जाती हैं इनमें से कुछ शीत धाराएँ तो सागर क गहराइयों में इतनी मन्द गति से चलती कि रेडियो सक्रियतामापक यंत्रों द्वारा देख पर कभी-कभी तो लगता है मानो सृष्टि आदिकाल का भी कुछ जल-भाग अ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(fossil) बनकर रह जाता है । और उष्ण धाराएँ हलकी होने के कारण पानी की सतह के निकट ही बहती हैं और उनका वेग ५-६ किलोमीटर प्रति घण्टा भी होता है । गल्फ स्ट्रीम इनमें मुख्य है और अतलान्तिक महासागर इसका प्रमुख क्रीड़ांगण है । यह धारा अतलान्तिक को एक प्रकार से मथकर रख देती है ।

इनकी उत्पत्ति के विभिन्न कारण

हमारी पृथ्वी का जल-भाग भी उथल-पुथल में रहता है । स्थिर पानी तो किसी काम का नहीं । पानी में स्वयं गति उत्पन्न करने की क्षमता नहीं, इसका प्रकृति को पूरा-पूरा ध्यान है । अतः जल को गति प्रदान करने के लिए उसने तीन मुख्य साधन प्रस्तुत कर दिये हैं—सूर्य का असमान ताप, पृथ्वी की गति और उससे उत्पन्न पवन के वेग, तथा पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण ।

पृथ्वी के जिन भागों पर एक बार में सूर्य का ताप पड़ता है वहाँ सभी जगह एक समान नहीं पड़ता । यह ताप भूमध्य सागर पर तीव्रतम और ध्रुवीय सागरों तक नहीं के बराबर पहुँचता है । ताप की यह असमानता तथा गुरुत्वाकर्षण, दोनों जब मिल जाते हैं तब सागर-जल का अपेक्षाकृत शीतल भाग सतह के नीचे बैठता है और उष्ण भाग ऊपर उठता है । यों, एक नयी धारा का जन्म हो जाता है । वायु की सहायता से यह आगे बढ़ती है । वायु स्वयं भी सूर्य के असमान ताप तथा पृथ्वी की गति से ही उत्पन्न होती है । इसमें भी जल की भाँति तप्त लहरें ऊपर उठती हैं और शीत लहरें नीचे बैठती हैं । वेगवान वायु उस नवोत्पन्न समुद्री धारा को गति देती है । पृथ्वी अपनी वेगवान गति से उत्तरी गोलार्द्ध की धाराओं को घड़ी की सुइयों के अनुकूल (clockwise) और दक्षिणी गोलार्द्ध की धाराओं को घड़ी की सुइयों के प्रतिकूल (anticlockwise) दिशाएँ प्रदान करती है । अतः जिस दिशा में यह वायु बह रही हो उसके दायें अथवा बायें, किंचित् कोण बनाकर, ये धाराएँ बहती हैं ।

इस कोणीय प्रभाव का सर्वप्रथम अनुभव १८९३ में नार्वे देश के नाविक एफ. नानसेन (F. Nansen) ने किया था । उसने देखा था कि ध्रुवीय सागर में उसका 'फ्राम' (Fram) नामक जहाज उस समय बहते हुए वायु की दिशा से २०° से ४०° तक का कोण बनाता हुआ समुद्री धारा से प्रेरित होकर चल रहा था । समुद्री धारा पर वायु का यह प्रभाव धारा के जल-परिमाण तथा ऋतु विशेष पर बहुत निर्भर करता है । जल का परिमाण जितना अधिक होगा, वायु का प्रभाव उतना ही कम होगा । वायु का भी विस्तार तथा वेग ऋतुओं पर तथा चारों ओर के प्रदेश की भौगोलिक परिस्थिति पर निर्भर करता है । तदनुसार ही वायु की स्थिति प्रति मास, प्रति ऋतु बदलती रहती है । समुद्री धारा पर इन परिवर्तनों का कम प्रभाव पड़ता है । उन प्रभावकारी वायुओं में आयन-वायु (trade winds) प्रमुख हैं । वैसे तो वायु नाम तथा स्वभाव से ही अत्यन्त परिवर्तन-शील है, किन्तु ये आयन-वायु ऐसी हैं जो अपरिवर्तित रूप से भूमध्य रेखा के उत्तरी पार्श्व में उत्तर-पश्चिम की ओर तथा दक्षिणी पार्श्व में दक्षिण-पश्चिम की ओर औसत ५०-६० कि.मी. प्रति घण्टे के वेग से बहती हैं । उत्तर-दक्षिण भूमध्य रेखीय धाराओं को गति देने में इन वायुओं का प्रमुख भाग है ।

प्रमुख धाराएँ

धाराओं के मुख्यतः दो विभाग हैं—सतह के निकट बहने वाली और गहराई में चलने वाली । सतह की धाराएँ वायु-चालित होती हैं और गहराई की धाराएँ अधिकतर पृथ्वी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की गति से प्रभावित होकर बहती हैं। इनकी गतियाँ भी तीन प्रकार की हैं—तीव्र, मन्द और अतिमन्द। विविध प्रदेशों, खाड़ी तथा अन्य आधारों पर इन्हें जो नाम दिये गये हैं, उनमें मुख्य ये हैं : १. गल्फ स्ट्रीम (माना जाता है कि यह मेक्सिको की खाड़ी से निकलती है); २. पेरू धारा; ३. ब्राजीलियन धारा; ४. उत्तरी अतलान्तिक धारा; ५. दक्षिणी भूमध्यरेखीय धारा; तथा ६. पश्चिमी वायुप्रेरित धारा।

गल्फ स्ट्रीम नाम ही गलत

समस्त मुख्य धाराओं के विवरण तो इस सीमित स्थल पर न आ सकेंगे। गल्फ स्ट्रीम अवश्य उन सबमें प्रमुख है। अत: उसी का किंचित् विस्तृत विवरण इन पंक्तियों में प्रस्तुत है। कुछ समय पहले यह कथन चौंकाने वाला माना जाता कि गल्फ स्ट्रीम नाम गलत आधार पर दिया गया है। आधुनिक खोजों ने यह सिद्ध कर दिया है कि इस धारा को मेक्सिको की खाड़ी (गल्फ) से उत्पन्न हुई मानना भ्रमपूर्ण है। सत्य तो यह है कि कैरीबियन धारा की ही उपधाराएँ मेक्सिको की खाड़ी के निकट बँट जाती हैं। कैरीबियन धारा स्वयं भी पश्चिम की ओर बहनेवाली भूमध्यरेखीय धारा का एक भाग है। केवल मेक्सिको की खाड़ी के निकट इसके विभाजन के कारण आज भी कुछ रूढ़िग्रस्त लोग वास्तविकता की ओर ध्यान न देकर इसे गल्फ स्ट्रीम ही कहना पसन्द करते हैं।

प्रथम परिचय और नाम-निर्धारण

गल्फ स्ट्रीम से प्रथम परिचय पाने का भी मनोरंजक इतिहास है। सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ के साहसिक नाविकों ने सर्वप्रथम इसका आभास पाया था। उस काल में नाविकों को अतलान्तिक महासागर से ही अधिक काम पड़ता था। उन्हीं में पोन्स डि लियान (Ponce de Leon) एक था जिसे उन दिनों की अपनी अतलान्ति[illegible] यात्रा में पहली बार गल्फ स्ट्रीम से साम[illegible] पड़ा था। वह यह देखकर आश्चर्य में [illegible] गया था कि वायु अनुकूल होते हुए [illegible] उसके जहाज को मानो पानी ने पकड़ [illegible] था। खोज करने पर उसे पता लगा [illegible] प्रतिकूल बहाव की गल्फ स्ट्रीम की धा[illegible] ही उसके जहाज को आगे बढ़ने से [illegible] रही थी।

औसत अनुमानों के पश्चात् इसका अ[illegible] लोकन और निश्चित स्वरूपांकन तो १७[illegible] में बेनजामिन फ्रैंकलिन के उद्योग से [illegible] किया जा सका था। वे उन दिनों बोस्[illegible] (अमरीका) में पोस्टमास्टर जनरल थे [illegible] बोस्टन के कस्टम बोर्ड वालों को [illegible] शिकायत थी कि इंगलैण्ड से आनेवा[illegible] माल-लदे जहाज औरों से अधिक समय ले[illegible] थे। इसका कारण खोजने के लिए फ्रैंकलि[illegible] ने अपने एक परिचित कप्तान फाल्ज[illegible] (Folger) से अनुरोध किया। फाल्ज[illegible] ने व्हेल-शिकारियों के दस्ते से मिलकर [illegible] बीड़ा उठाया। उन शिकारियों को गल्[illegible] स्ट्रीम का अन्दाजा तो था ही। अत: [illegible] अपने जहाजों को उससे बचाकर निकाल [illegible] जाते थे। बीच में कुछ ऐसे स्थल भी [illegible] जहाँ उन्हें एक धारा को काटकर दूसरी ओ[illegible] जाना पड़ता था। उन स्थलों पर प्रतिरो[illegible] धाराओं में अटके हुए कुछ ब्रिटिश जहा[illegible] उन्हें दिखायी दिये। इन्होंने उनका ल[illegible] इस ओर खींचा और समझाया भी कि इ[illegible] प्रकार तो उन्हें प्रति घण्टा तीन मील अधि[illegible] चक्कर काटने पड़ते हैं। किन्तु प्रमादवश उ[illegible] ब्रिटिश नौ-अधिकारियों ने इन्हें साधार[illegible] नाविक समझकर इनकी बात को को[illegible] महत्त्व नहीं दिया। फाल्जर ने गल्फ स्ट्री[illegible] का अनुमानित नक्शा भी तैयार कर लि[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और फ्रैंकलिन को भेंट कर दिया। फ्रैंकलिन ने अपने यहाँ उसे पत्थर पर अंकित करा दिया और उसकी एक प्रतिलिपि सहृदयतावश इंगलैण्ड भी भेज दी किन्तु वहाँ वालों ने पुनः अहंकारवश उसे खटाई में डाल दिया।

इन समुद्री धाराओं की शक्ति अपरिमित है। जहाँ मेक्सिको की खाड़ी फ्लोरिडा और क्यूबा के मध्य कुछ सँकरी हो जाती है, वहाँ इस गल्फ स्ट्रीम का विस्तार असीम हो जाता है। वहाँ इसकी चौड़ाई लगभग १५० कि.मी., गहराई ⅔ कि.मी. तथा वेग करीब ६ कि.मी. प्रति घण्टा रहता है। उस स्वरूप में यह धारा सौ मिसीसिपी नदियों के बराबर जल वहन करती है।

जिस प्रकार अतलान्तिक महासागर में गल्फ स्ट्रीम का साम्राज्य है, उसी प्रकार प्रशान्त महासागर में उत्तरी भूमध्यरेखीय धारा का प्रभुत्व है। यह धारा जगह-जगह बँटकर अनेक नामों से पुकारी जाती है। यह पनामा से फिलिपाइन तक २३००० वर्ग कि.मी. के विस्तार में अपना राज्य फैलाये हुए है। जापान के निकट पहुँचकर यह उत्तर की ओर मुड़ जाती है। वहाँ इसका नाम जापान धारा अर्थात् 'एशिया की गल्फ स्ट्रीम' हो जाता है। जिस प्रकार अतलान्तिक की उष्ण गल्फ स्ट्रीम की भेंट उत्तर में बर्फीली लेब्राडोर धारा से होती है, उसी प्रकार यह जापान धारा भी उत्तर की बर्फीली ओयाशियो धारा से जा मिलती है। दक्षिणी प्रशान्त महासागर की प्रमुख धारा हमबोल्ट धारा है। इसे पेरू धारा भी कहते हैं।

धाराओं के विभिन्न प्रभाव

वनस्पति तथा प्राणी-जगत इन धाराओं से पूरा-पूरा प्रभावित रहता है। यदि अटलान्तिक में गल्फ स्ट्रीम न होती तो ग्रेट ब्रिटेन भी उत्तरी ध्रुव की भाँति हिमाच्छादित होता, जीवन-शून्य होता। जहाँ शीतल और उष्ण धाराएँ मिलती हैं, अर्थात् गल्फ स्ट्रीम और लेब्राडोर धारा के संगम-स्थल पर घना कुहरा छा जाता है। शीतकाल में तो यह संगम ताप का अन्तर इतना स्पष्ट प्रदर्शित करता है कि अनेक बार उस स्थल पर ठहरे हुए जहाजों के अग्र भाग और पृष्ठ भाग में २०°F तक का अन्तर पाया गया है! अमरीका के संयुक्त राज्य के तट और गल्फ स्ट्रीम के मध्य एक शीतल धारा बहती है जिसके कारण अमरीका के पश्चिमी तट की अपेक्षा उसका पूर्वीय तट ठण्डा रहता है।

धाराओं में बहकर आया हुआ दलदल जहाँ जमा हो जाता है वहाँ एक नया ही थल बन जाता है जिसे महातट (Grand Bank) कहते हैं। अतलान्तिक की गल्फ स्ट्रीम को एक वृहत् भौगोलिक परिवर्तन कर देने का भी श्रेय प्राप्त है। अतलान्तिक की ओर संयुक्त राज्य अमरीका के दक्षिणी किनारे पर केनेवरल (Canaveral), फीयर (Fear), लुक आउट (Look out) तथा हेटेरस (Hatteras) नामक जो चार महत्त्वपूर्ण अन्तरीप बन गये हैं वे गल्फ स्ट्रीम की ही

बर्फीली हमबोल्ट धारा भूमध्य रेखा पर स्थित गैलेपेगोस टापुओं के प्राणियों को प्रचण्ड ताप से बचाये रखती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

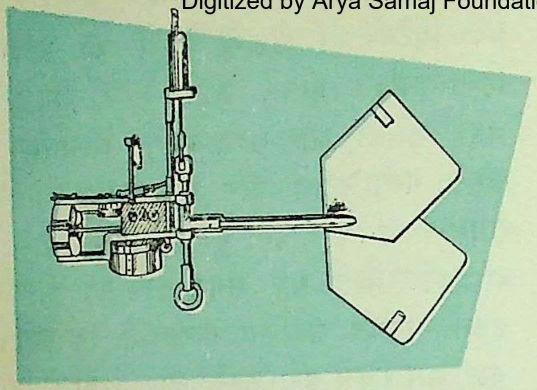

धारामापी (Current Meter) द्वारा सागर सरिताओं (समुद्री धाराओं) का वेग और दिशा ज्ञात की जाती है

कृपा से बने हैं। इसका रहस्य यह है कि तीव्र वायु के कारण वहाँ सागर की सतह करीब २० सें.मी. उठ जाती है। अतः ढलान पाकर गल्फ स्ट्रीम बढ़े हुए वेग से दौड़ती है और वहाँ की मिट्टी, चट्टानें आदि काट-काटकर बहाती हुई नये मार्ग, नयी भूमि बनाती जाती है।

यह धारा अपने साथ अत्यन्त उर्वरक मिट्टी भी लिये चलती है। अनुमान है कि वर्ष भर में लगभग ३ लाख टन उर्वरक इस धारा में बहकर आये हुए ग्वानो (guano) नामक उन समुद्री पक्षियों के अवशेषों से प्राप्त होता है जो मरकर इसमें गिरते रहते हैं। साथ ही यह भी अनुमान है कि उर्वरक की इस मात्रा को बनाने के लिए उन पक्षियों ने लगभग ४० लाख टन मछलियाँ पचायी होंगी। इसके अतिरिक्त जब कभी इस धारा का अभाव हो जाता है तब वे मछलियाँ पोषण न मिलने से स्वतः तेजी से मरने लगती हैं। इन मछलियों के मरने से उन पक्षियों को भी भोजन का अभाव ले बैठता है। यह दोहरा जन्तु-विनाश और उनकी सड़ाँध ऐसी विषैली गैस उत्पन्न करते हैं जो अन्य समुद्री जीवों का भी विनाश करती है। यह गैस जहाजों पर भी विचित्र रंग चढ़ा देती है। वैसे यह घटना अपवा स्वरूप ही होती है। पिछली शताब्दी ऐसी घटना केवल तीन बार देखने आयी थी।

धाराओं का रेखांकन

समुद्री धाराओं को अंकित करने अनेक विधियाँ प्रचलित हैं। निर्धारित सम पर धाराओं का उतार-चढ़ाव तथा ता परिवर्तन उन गणनाओं के मुख्य विषय हैं हाल ही में एक नया यंत्र तैयार किया गय है जिसके द्वारा इनका अंकन काफी शु रूप में संभव है। लन्दन की नेशन इन्स्टीट्यूट आव ओशनोग्राफी ने एक बैलू बनाया है। वह बैलून पानी की सतह प तैराया जाता है। वहीं से वह एक ध्व प्रसारित करता है जो सतह पर तैरते हु जहाज के गणनापट पर अंकित कर जाती है। बैलून ३ मीटर लम्बा होता है

संयुक्त राज्य अमरीका के पूर्वीय पार्श्व पर चार अन्तरीप गल्फ स्ट्रीम की ही देन हैं

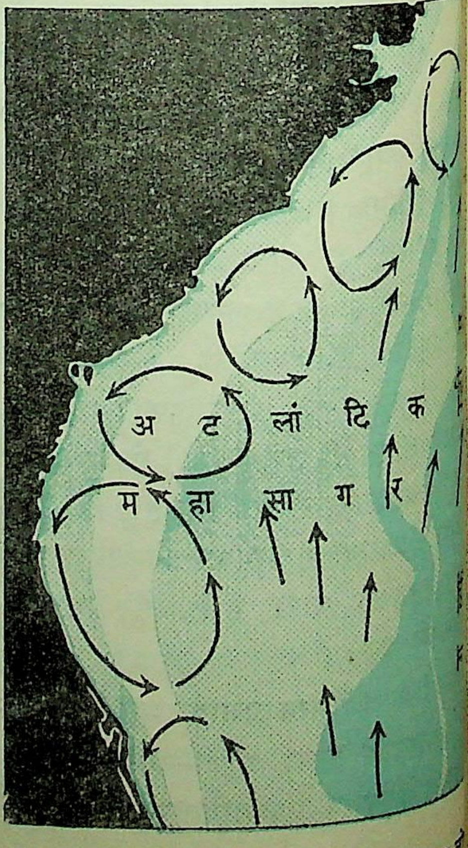

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

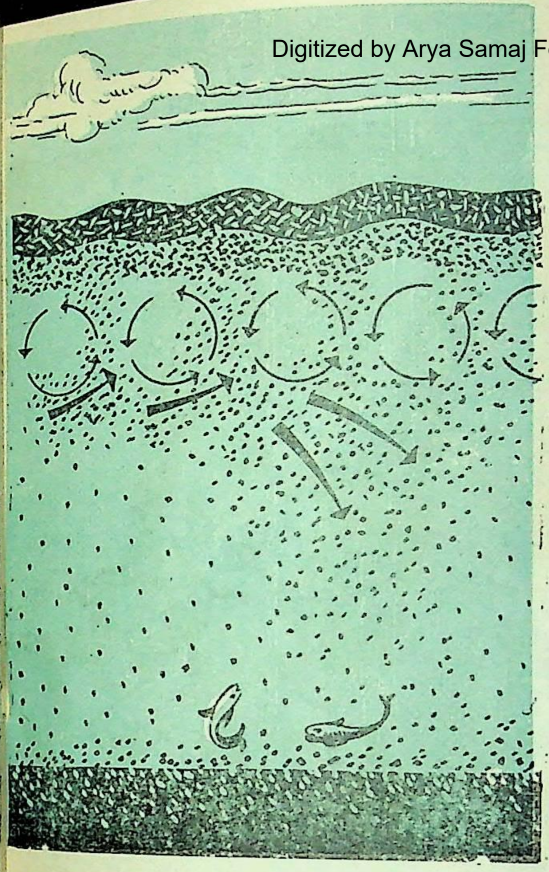

समुद्र में मृत मछलियाँ नीचे बैठ जाती हैं और उनके खनिज अवशेष धाराओं द्वारा ऊपर आकर सतह की वनस्पतियों में मिल जाते हैं। उन वनस्पतियों पर अन्य मछलियाँ अपना निर्वाह करती हैं

उसमें जेनरेटर, बैटरियाँ तथा वजनी बाँट रखे जाते हैं। बाँटों को घटा-बढ़ाकर भार कम या अधिक कर लिया जाता है ताकि बैलून को चाहे जिस गहराई पर तैराए रखा जा सके। जिस धारा की खोज की जा रही हो, उसके प्राप्त होते ही बैलून उस धारा में तैरा दिया जाता है। बैलून उसमें तैरता हुआ, उसके वेग, दिशा और ताप आदि के विवरण जहाज को भेजता जाता है। ऐसे एक बैलून की सहायता से एक प्रतिरोधी शीतल धारा की खोज समुद्र में ३००० मीटर की गहराई पर की जा सकी थी।

इस प्रकार यह नहीं कहा जा सकता कि महासागरों का पानी अलग-अलग है। अतलान्तिक का पानी भूमध्य सागर में, प्रशान्त का हिन्द महासागर में ले जाती हुई सागर में छिपी ये सरिताएँ उत्तर को दक्षिण से और पूर्व को पश्चिम से मिलाती हैं। मनोरम सागर तट पर हमें आज मिलनेवाली शीतल वायु, संभव है, वर्षों पहले ध्रुवीय अंचल का स्पर्श पाये हुए किसी समुद्री धारा के कारण ही हो! इसी प्रकार उष्ण और आर्द्र वायु का झोंका भी एक ऐसी धारा से प्रभावित होकर आया होगा जो अपनी भूमध्यरेखीय यात्रा से लौट रही होगी। इन सागर सरिताओं के प्रभाव से ही भूमण्डल के महासागर आज अनेक नहीं, एक हैं।

नींद भी बिजली से!

चिकित्सा के अन्तर्गत कृत्रिम नशा अथवा बेहोशी लाने की अब आवश्यकता न रहेगी। बिजली के यन्त्र द्वारा ही आपको गहरी नींद में सुलाया जा सकेगा। तीन सोवियत वैज्ञानिक एन. एस. लिवेत्सोव, जेड. ए. किरिलोव तथा वाइ. ई. सँगल ने वी. ए. गिल्यारोव्स्की के निरीक्षण में उस अद्भुत यन्त्र का सफल प्रदर्शन किया है जिसे इंग्लिश तथा फ्रेञ्च पत्रकारों ने 'नया रूसी चमत्कार' कहा है। मनुष्य कदाचित् २५-३० दिन भूख-हड़ताल खेंच ले जाय किन्तु नींद-हड़ताल तो ८-१० दिन की भी उसके बस की बात नहीं। शरीर के लिए ऐसी संजीवनी निद्रा को रिझाने के लिए अब गोलियों, इन्जेक्शनों का तो सहारा नहीं लेना पड़ेगा! उपरोक्त वैज्ञानिकों के मतानुसार सम्मोहन अर्थात् हिप्नोटिज्म द्वारा प्रेरित नींद में और इस यान्त्रिक नींद में कोई अन्तर नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

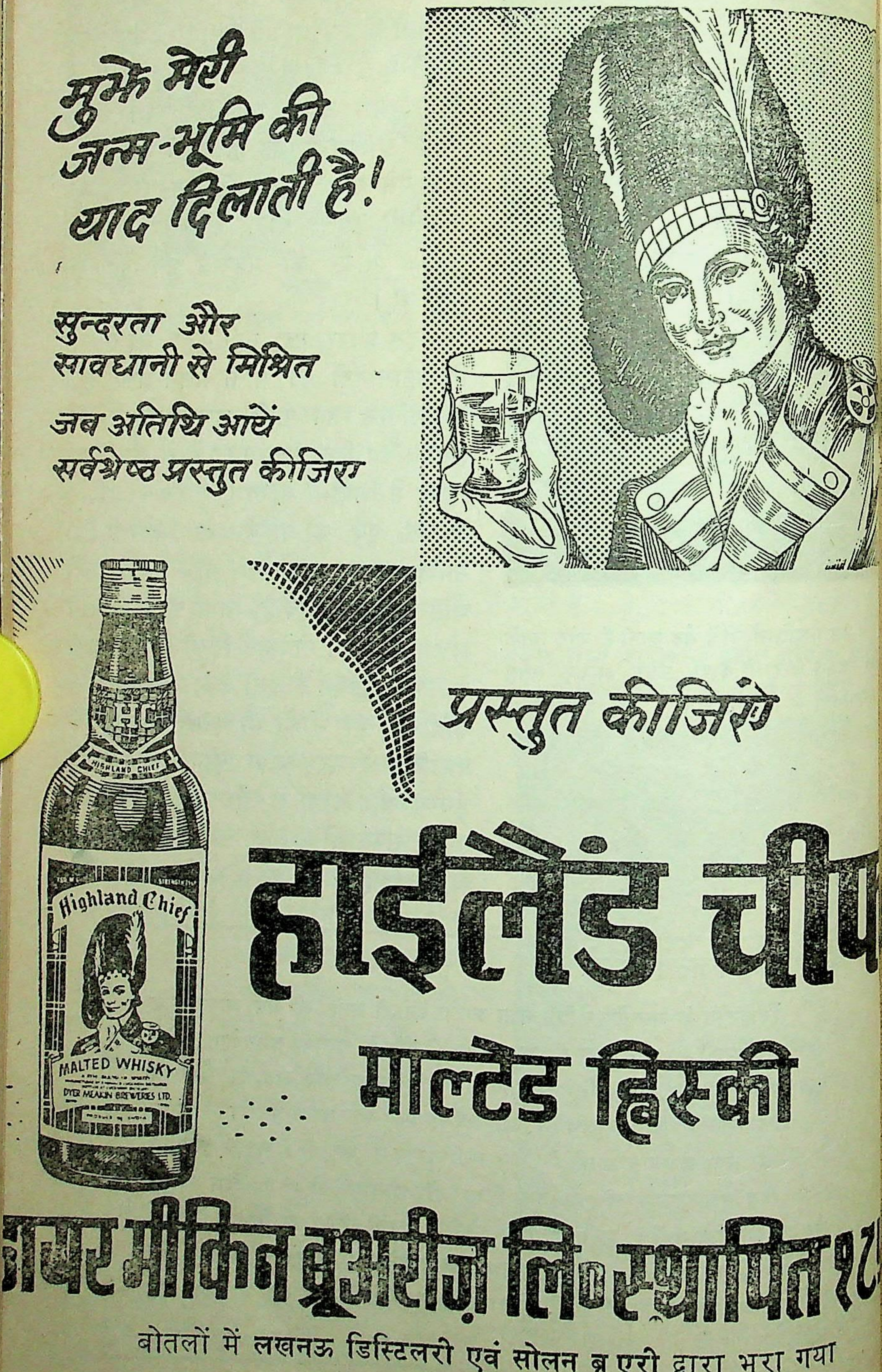

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुउपयोगी केला

नरेन्द्र छाबड़ा

केले का इतिहास उतना ही पुराना है जितनी हमारी सभ्यता। यूनान के एक इतिहासकार ने भारत पर सिकन्दर के आक्रमण-काल में केले का भी उल्लेख किया है। अतः वहाँ के लोग बहुत पहले से केले से परिचित थे। इसे 'स्वर्ग का सेब', 'आदम का अंजीर' और 'पाला' जैसे नामों से पुकारा जाता था। दक्षिण भारत में तो आज भी 'पाला' ही नाम प्रचलित है।

केला-वृक्ष के विभिन्न उपयोग

भारतीय संस्कृति में केले का महत्त्वपूर्ण स्थान है। खम्भे जैसा इसका तना, केल-स्तम्भ, शोभा और समृद्धि का प्रतीक माना गया है। विवाहादि मंगल अवसरों पर केले के ही तनों, पत्तों से मण्डप सजाये जाते हैं। इसके लम्बे-चौड़े मुलायम पत्तों से खाने के पात्र, पत्तलें बनायी जाती हैं। इसके पत्तों व तने के रेशों से भारत की प्रसिद्ध साड़ियाँ तथा अन्य वस्त्र तैयार किये जाते हैं। केले के वृक्ष का शायद ही कोई भाग ऐसा हो जो उपयोग में न आता हो।

केला-उत्पादन

केले की १०० से भी अधिक किस्में उपजायी जाती हैं। भारत, अमरीका, इंगलैण्ड, फ्रांस, तथा मेक्सिको प्रमुख केला-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलियाँ क्रमशः केलों में परिणत होती हुईं

उत्पादक देश हैं। भारत में मद्रास, कोचीन, त्रावणकोर, बम्बई तथा पश्चिमी बंगाल में यह अधिकता से उपजाया जाता है। मालभोग, चीनीचम्पा, सोनकेला, राजली, रसवाल आदि केले की मुख्य किस्में प्रचलित हैं। इनमें भी बम्बइया और कलकतिया केले अधिक प्रसिद्ध हैं। केले के फल बड़े-बड़े गुच्छों के रूप में पेड़ में लगते हैं। गुच्छे हरे होते हैं तभी उन्हें उतार लेते हैं। यदि केले को पेड़ पर ही पकने दिया जाए तो फल में महक नहीं रहेगी और छिलका फटकर कीड़े पड़ जाने का खतरा रहेगा।

पोषण तत्त्वों का भण्डार, केला

केले में शरीर के लिए आवश्यक प्रायः सभी तत्त्व भरे हैं। उनमें मुख्य हैं—प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, सोडियम, कैलसियम, पोटैशियम, मैगनीशियम, लोहा, ताँबा, फासफोरस, गंधक, क्लोरीन, राइबोफ्लेविन, नियासिन, तथा विटामिन ए, बी और सी। इसमें अम्लीय तत्त्वों की अधिकता होने के कारण शरीर का अम्लीय संतुलन बनाये रखने में सहायता मिलती है। इसमें शर्क- और श्वेतसार प्रचुर मात्रा में पाये जा- हैं। इससे प्राप्त केलोरी की मात्रा अ- समस्त फलों से कहीं अधिक होती है। कच्चे केले में २० से २५% श्वेतसार, फल पकने पर १४ से २०% तक रह जाती है, शेष शर्करा में परिवर्तित हो जाती है।

केला—भोजन भी, औषध भी

केला बारहों महीने उपलब्ध है। पौष्टि- तत्त्वों से भरपूर और सस्ता यह केला ज- साधारण का फल है। अनेक देशवासि- का तो केला ही रोटी-पानी जैसा मुख्य भोज- है। जहाँ अनाज उपलब्ध नहीं, वहाँ इस- आटा ही रोटी बनाने के काम आता है, कच्चे केले को सुखाकर रोटी बनाने में उस- आटे का उपयोग करते हैं। इसकी रो- वायु-विकार दूर करती है। पका के- पाचक, पौष्टिक और शीतल होता है। य- भ्रम है कि केला देर से पचता है। भर- केले खाकर १-२ इलायची खा लेने से तुर- पच जाते हैं। यह नेत्र रोगों में लाभका- है और आँतों के कृमियों और रोगाणुओं के लिए तो मृत्युदूत ही है। मूत्र में बढ़ी हु- यूरिक एसिड की मात्रा भी यह आश्चर्यजन- रूप से घटा देता है। जोड़ों के दर्द में भ- लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

केला सुखाकर अंजीर की तरह भ- खाया जाता है। कच्चे केले की सब्जी बहु- स्वादिष्ट बनती है। पका केला अन्य फ- के सलाद के साथ बढ़िया चाट का आन- देता है। आजकल तो हथेली पर सर- जमाने की तरह कच्चे केले को कृत्रि- रूप से गैस-हीटरों द्वारा पकाया जाता है, सर्दियों में बन्द कमरे में एथिलीन गैस द्वा- भी पका लिया जाता है। इसी तरह स- हरे केलों पर आकर्षक चित्तियाँ भी कृत्रि- रूप से डाल ली जाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

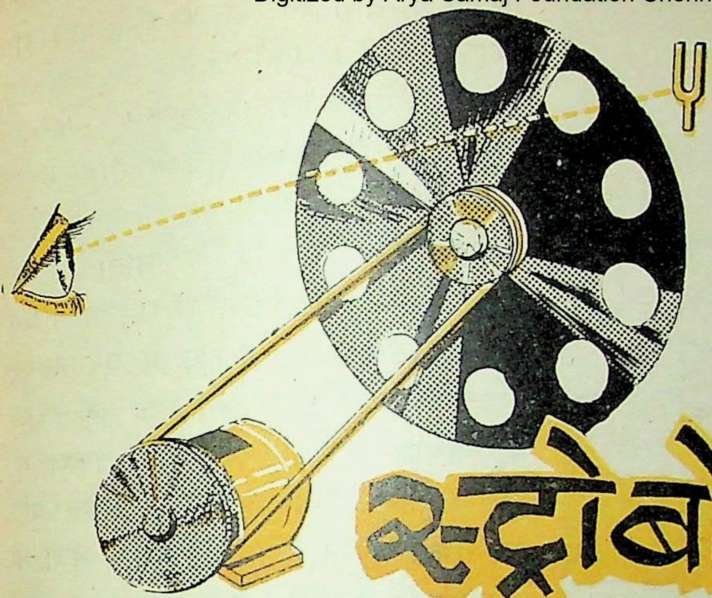

स्ट्रोबोस्कोप

डा. मनोहरलाल शर्मा

हमारे नेत्रों का एक स्वभाव दृष्टि-स्थिरता (persistance of vision) है । इसके प्रभाव से कोई भी वस्तु अपना काल्पनिक बिम्ब प्राय: १/१६ सेकण्ड तक नेत्रपटल (retina) पर छोड़ जाती है । उस समय के व्यतीत होने से पहिले ही यदि वही वस्तु घूमकर पुनः हमारी दृष्टि के सम्मुख आ जाए तो वह दो नहीं, एक ही प्रतीत होगी । चलचित्र इसी सिद्धान्त पर आधारित है । पर्दे पर तसवीरें इसी के प्रभाव से चलती-फिरती दिखती हैं । इसी दृष्टि-स्थिरता पर आधारित दूसरा उपयोगी यन्त्र स्ट्रोबोस्कोप है । यह शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्दों से बना है जिनका संयुक्त अर्थ है—चक्र दृश्य । अत: इस यन्त्र को चक्रगति-निरीक्षक यन्त्र समझना चाहिए । यन्त्र उद्योग में तीव्र वेग से घूमती हुई मशीनें तथा उनके पुर्जों की गति का माप और गत्यावस्था में ही कार्य-निरीक्षण करने में यह यन्त्र अत्यन्त उपयोगी है । बहुत पहले माइकेल फैरेडे इस विषय में सामान्य रूप से कार्य कर चुके थे, परन्तु सैद्धान्तिक रूप से इसे प्रस्तुत करने का श्रेय फर्डिनेन्ड प्लेटो (Ferdenand Plato) को है । निश्चित वैज्ञानिक स्वरूप तो १८६६ में आगस्ट टापलर (August Toplar) ने ही दिया । इसके सिद्धान्त को सरल रूप से इस प्रकार समझा जा सकता है : अत्यधिक वेग से चक्राकार घूमती हुई किसी वस्तु पर एक निश्चित क्रम से प्रकाश रेखा फेंकी जाए अथवा वह वस्तु स्वयं ही एक प्रकाश रेखा को निश्चित क्रम से काटती जाए और उस निश्चित क्रम का वेग उस वस्तु की गति के समकक्ष हो जाए तो वह वस्तु स्थिर प्रतीत होगी । अत: उपरोक्त विधि से प्रकाश रेखा के पड़ने अथवा कटने के जिस वेग पर स्थिरता का प्रभाव प्रतीत हो, वही वेग उस घूमती हुई वस्तु का भी माना जाएगा । निम्न उदाहरण से यह और भी स्पष्ट हो जाएगा ।

एक स्वर द्विभुज (tuning fork) की किसी भी एक भुजा पर हलकी-सी चोट देने पर मधुर स्वर-लहरी गूंज उठती है । वह भुजा प्रकम्पित होकर ही उन ध्वनि-लहरों को उत्पन्न करती है । वह कम्पन हम निरी आँखों से न देख सकेंगे । अत: जिस सरल विधि द्वारा उसका कम्पन मापना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

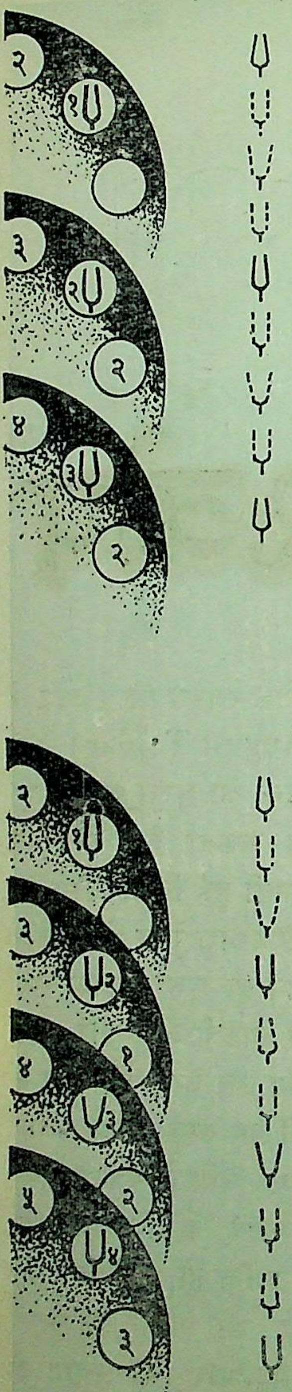

ऊपर : यदि चकरी की गति द्विभुज के कम्पन के समान हो जाएगी तो द्विभुज स्थिर नजर आएगा।

नीचे : दोनों की असमान गत्यावस्था में द्विभुज मन्द प्रकम्पित नजर आएगा क्योंकि प्रत्येक बार वह भिन्न छिद्र से दिखेगा

सम्भव है, उसी का जटिल स्वरूप स्ट्रोबोस्कोप यन्त्र है। प्रयोगस्वरूप दस समान छिद्रोंयुक्त एक गोल चकरी चित्र में दिखाए अनुसार इलेक्ट्रिक मोटर से जोड़ दी जाती है। उसकी सहायता से वह तेजी से गोलाई में घूम सकेगी। चकरी के पीछे स्वर अर्थात द्विभुज फिट किया हुआ रहेगा। अब यदि यह चकरी एक सेकण्ड में एक चक्कर पूरा कर ले तो इसके दसों छिद्र एक सेकण्ड में, अर्थात प्रत्येक छिद्र १/१० सेकण्ड में हमारी दृष्टि से निकलता रहेगा। अतः यदि हम समझ लें कि उस द्विभुज की भुजा भी एक सेकण्ड में दस बार (वस्तुतः काफी तीव्र गति से) कम्पन करती है तो इस प्रयोग द्वारा वह भुजा स्थिर प्रतीत होगी। स्पष्टतः इसका कारण यह है कि दृष्टिरेखा के कटने की और भुजा के प्रकम्पन की गति समान हो गयी। इस प्रभाव को गति-स्थिरता (motion freezing) कहते हैं। इस प्रकार चकरी का सही वेग तथा इसके छिद्रों की संख्या ज्ञात होने से भुजा की कम्पन-गति मापी जा सकती है। इसमें एक यह संशय तब उपस्थित हो सकता है जब चकरी के छिद्रों की संख्या १० के बजाय २०, ३० और ४० हो जाए, तब भी प्रकम्पित भुजा स्थिर ही प्रतीत होगी। इसका रहस्य यह है कि छिद्रों की मूल संख्या जो भी हो, उसके गुणानुपात में बढ़ते हुए छिद्रों पर अर्थात २०, ३०, ४०, ५० पर भी स्थिरता का प्रभाव बना रहेगा।

गति-स्थिरता का यह सिद्धान्त अन्य सरल उदाहरणों से भी स्पष्ट हो जाएगा। बिजली की सजावटों में प्रायः ऐसे बल्बों की झालरें भी देखते हैं जो घूमते नजर आते हैं और एक भी बल्ब बुझता हुआ नहीं दिखता। उसकी व्यवस्था इस प्रकार की जाती है—मान लीजिए, बिजली की मुख्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रामोफोन की गति ठीक आने पर बल्ब के प्रकाश में ये बिंदियाँ स्थिर ही दिखेंगी

धारा प्रत्यावर्ती (AC) और ५० चक्कर (cycles) प्रति सेकण्ड की है। उस धारा को इस प्रकार परिवर्तित करके बल्बों में पहुँचाएँगे कि उसकी गति दुगुनी अर्थात् १०० चक्कर प्रति सेकण्ड की हो जाए। फलस्वरूप मुख्य धारा के प्रति एक चक्कर पर बल्ब में दो बार बिजली नहीं पहुँचेगी, अर्थात् वह जलता-बुझता रहेगा। वह गति इतनी तीव्र होती है कि हमारी दृष्टि को उसका आभास नहीं हो पाता।

इसी प्रकार एक ग्रामोफोन रिकार्ड की भी गति मापी जा सकती है। इसमें प्रकाश के लिए मर्करी ट्यूब अथवा दूधिया लैम्प लेते हैं जिससे प्रकाश बिखरे नहीं और साफ, सीधा पड़ता रहे। रिकार्ड के ऊपर एक ऐसी गोल तख्ती बिठा दी जाती है जिस पर आवश्यक माप अंकित रहते हैं। निर्धारित गति न आने तक तो प्रकाश-रेखा भी घूमती हुई दिखती है किन्तु निर्धारित गति आ जाने पर स्थिर प्रतीत होती है। उदाहरणार्थ रिकार्ड के चक्कर जब प्रति मिनट ७८ हो जाएँगे तो प्रकाश-रेखा स्थिर दिखेगी।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यकाल में इस विषय पर लिखित सामग्री से ज्ञात होता है कि उन दिनों अनेक प्रकार के स्ट्रोबोस्कोप यन्त्र काम में लाये जाते थे। प्लेटो (Plato) द्वारा निर्मित चकरी में लम्बाकार छिद्र रहते थे। उन दिनों इसका अधिक उपयोग ध्वनि-लहरों को मापने के लिए होता था। अतः स्वर द्विभुज की भुजाओं में भी छिद्र रखे जाते थे। इसके अतिरिक्त चक्राकार घूमने वाले कम्पनशील दर्पणों का भी उपयोग होता था।

आज के युग में इलेक्ट्रानिक विधियाँ तो स्वयं ही आश्चर्यजनक हैं। आजकल स्ट्रोबोस्कोप का उपयोग गतिमापन के लिए उतना महत्त्वपूर्ण नहीं समझा जाता, जितना कि तीव्र वेग से घूमती हुई वस्तु में गति-स्थिरता (motion freezing) का प्रभाव उत्पन्न करके उसी अवस्था में उसकी कार्य-प्रणाली, कार्यक्षमता आदि का सूक्ष्म अध्ययन करना। अतः बड़े-बड़े कारखानों में खराद, (Lathe), बरमे (Drill) आदि का तथा विद्युत वेग से हजारों प्रतियाँ प्रति मिनट छाप देनेवाली प्रिंटिंग मशीनों का चलती हुई अवस्था में सूक्ष्म अध्ययन स्ट्रोबो-स्कोप द्वारा ही सम्भव है।

रिकार्ड के बीच में लगायी गयी अंकित गोल तख्ती ग्रामोफोन की सही गति आने पर स्थिर नजर आएगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्महत्याएँ

अनिलकुमार जैन

'मृत्यु पर मानव का बस नहीं', यह स्वाभाविक मृत्यु के लिए ही सत्य है। कुछ मृत्युएँ ऐसी भी हैं जिन पर मानव का पूर्ण अधिकार है। विवेक-अविवेक, सदाशय-दुराशय द्वारा मानव चाहे तो अस्वाभाविक, असामयिक तथा आकस्मिक मृत्युओं को, हत्या-आत्महत्याओं को टाल सकता है अथवा बढ़ावा दे सकता है।

प्रति मिनट एक आत्महत्या

कुछ ऐसे भी देश-प्रदेश हैं जहाँ सेकण्ड की सुई एक पूरा चक्कर घूमी नहीं, कि किसी का जीवनचक्र भी अन्तिम चक्कर घूम गया। एक मिनट में एक आत्महत्या किसी भीं देश अथवा समाज के लिए बड़े से बड़ा अपराध, बड़े से बड़ा कलंक कहा जा सकता है। संसार में सबसे अधिक आत्महत्याएँ क्रमशः जापान, स्विट्जरलैण्ड, पश्चिमी जर्मनी, अमरीका तथा स्वीडन में होती हैं। हमारे देश में भी सौराष्ट्र तथा गुजरात में औसत, विशेषतः स्त्रियों का, प्रतिदिन दो आत्महत्याओं का है।

उत्तरदायी कौन ?

इस प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए तनिक गहरे उतरना होगा। सरसरी तौर पर यह कहा जा सकता है कि ये हत्याएँ, आत्महत्याएँ नहीं, प्रेरित हत्याएँ हैं अ
समाज तथा व्यक्ति इन्हें चाहें तो रोक स
हैं। इनमें कम से कम ८०% कमी तो
ही जा सकती है। समाज का आर्थि
असंतुलन, मान-प्रतिष्ठा की भ्रमपूर्ण सीमा
रूढ़िगत दूषित परम्पराएँ तथा अनुचि
स्पर्द्धा ही इन आत्महत्याओं के मु
कारण हैं।

दूसरों की तुलना में समान बौद्धि
स्तर का व्यक्ति अपने परिवार में अ
परिवार अपने समाज में जब समान प्रति
और स्नेह आदि पाने की अपेक्षा अवहेल
और अभावों का बवण्डर पाता है तो
असहाय हुआ आत्महत्या के लिए प्रे
होता है। उदाहरणार्थ, समाज में अन्य प्रका
से समान स्तरीय एक परिवार जब विप
को सुख-साधन सम्पन्न तथा स्वयं को मौ
आवश्यकताओं की भी पूर्ति के साधनों
हीन देखता है और उसका दोष स्वयं
नहीं, समाज के ढाँचे में पाता है तो जी
के प्रति उसका विश्वास हिल उठता है
इसी प्रकार बड़े परिवार में विभिन्न घ
से आयी हुई विवाहिताएँ साथ में लायी
दहेज के अनुपात में परिजनों का स्नेह औ
आदर पाती हैं, तो स्वभावतः ही अल्प

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाने वाली वधू के दिन सिसकते और रातें रोते ही बीतती हैं। शीघ्र ही वह अशुभ घड़ी आ जाती है जिसको पीड़ित व्यक्ति तो नहीं टाल सकता, किन्तु पीड़ित करने वाले व्यक्ति चाहें तो विवेक-बुद्धि से अवश्य टाल सकते हैं। इसी प्रकार असफल प्रेमी-प्रेमिकाएँ भी, जब उन्हें कुण्ठाग्रस्त समाज अपनाने को तैयार नहीं होता, इस मार्ग को अपनाते हैं और जो अनमोल जीवन समाज और राष्ट्र के लिए गौरव हो सकते थे, असामयिक, अस्वाभाविक और समाज-प्रेरित मृत्यु की काली चादर ओढ़ने को विवश हो जाते हैं।

कुछ अवलोकन, कुछ तथ्य

विभिन्न अवलोकनों से अनेक विचारणीय तथ्य प्रकट हुए हैं। देखा गया है कि अधिकतर मध्य-स्तरीय व्यक्ति ही आत्महत्या की भावना से पीड़ित रहते हैं। समृद्ध और सम्पन्न व्यक्ति, कठिन परिश्रमी अथवा ठेठ फाकेमस्त व्यक्ति को ऐसी आत्मघाती कल्पना सहेजने का अवकाश ही नहीं होता। मध्यम वर्ग का व्यक्ति यदि व्यावसायिक तथा आर्थिक कठिनाई में है, अविवाहित, अथवा पत्नी द्वारा परित्यक्त है तो उसकी आत्महत्या की सम्भावना अधिक सहज होगी। किन्हीं अवसरों पर आत्महत्या की भावना जब एकाएक नया मोड़ ले लेती है तब हत्याओं का पलड़ा भारी हो जाता है। वैसे भी इन दोनों में आनुपातिक न्यूनाधिकता रहती है, अर्थात् जब एक का औसत बढ़ा हुआ रहता है तब दूसरे का घटा हुआ।

सूक्ष्म अन्तर्वेदनाओं के अतिरिक्त बाह्य परिस्थितियाँ भी इस कुप्रवृत्ति को बढ़ावा देती हैं। उदाहरणार्थ, जब अपने-पराये और दूर-पास के सभी व्यक्ति छुट्टियाँ मनाने के लिए चले गये हों और उदास, उपेक्षित व्यक्ति की छाती पर पहाड़-सा दिन खड़ा हो अथवा सूनी, काली रातें काटे न कटती हों, तब यह कल्पना और भी जोर पकड़ती है कि जिन्दगी बेकार है और इस घड़ी से अच्छी दूसरी घड़ी मिलेगी नहीं।

इनके अतिरिक्त आत्महत्याओं की आठ-दस हजार घटनाओं के अध्ययन से निम्न निष्कर्ष भी प्राप्त हुए हैं:

(१) जो व्यक्ति अन्तरात्मा की आवाज का नियन्त्रण मानता है उसे यदि आत्महत्या की प्रेरणा अन्तरात्मा से ही मिली हो, तो वह किसी के रोके न रुकेगा।

(२) जिस व्यक्ति के तन अथवा मन की पीड़ा सहन-सीमा से बाहर हो चुकी हो, वह इसी मार्ग को अपनाएगा।

(३) किन्हीं मान्यताओं वश जिसकी यह धारणा बन गयी हो कि मृत्योपरान्त समृद्ध और सुखी जीवन प्राप्त होगा, उसे भी कोई न रोक सकेगा। जापान में यही भावना वहाँ की आत्महत्या का अंक संसार भर में उच्चतम पहुँचाये हुए है और वहाँ की 'हाराकिरी' प्रथा सर्वाधिक जन-संहारक है।

(४) असफल प्रेम, तीव्र घृणा और घोर प्रतिहिंसा की भावनाएँ भी जब उचित निष्कासन के मार्ग बन्द पाती हैं तो यही मार्ग शेष रह जाता है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक फ्रायड का कथन है कि आत्मघाती बीजारोपण प्रायः बाल्यावस्था में ही हो जाता है। बालक जब देखता है कि माता-पिता की ओर से उसे फटकार ही फटकार मिलती है और उसके भाई-बहनों को लाड़-प्यार मिलता है तो इस अन्याय के प्रति उसकी विद्रोह-भावना अन्दर ही अन्दर बल पकड़ती जाती है। यदि बालक सहनशील और मेधावी रहा तब तो स्वाश्रयी होकर वह निराशाओं का मुँह मोड़ देगा, किन्तु वैसे उदाहरण अपवाद स्वरूप ही होते हैं और अधिकतर परिणाम अवांछित ही निकलते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह गम्भीर चिन्ता का विषय है कि एक ओर अनेक जनसंहारक महामारियों की रोक-थाम के लिए विपुल धन खर्च करके बड़ी-बड़ी योजनाएँ, बड़े-बड़े अभियान खड़े किये जाते हैं, दूसरी ओर उन सबसे विकटतम संहारक इस आत्मघाती प्रवृत्ति को रोकने के लिए आवश्यक ध्यान दिया ही नहीं जाता। कितनी शोचनीय बात है कि एक भली-चंगी जिन्दगी जो स्वयं तो समाज और राष्ट्र के लिए उपयोगी सिद्ध हो ही सकती थी, वंश-वृद्धि द्वारा अन्य भी योग्यतापूर्ण जनबल दे सकती थी, वह पानी के बुलबुले की तरह यों समाप्त हो जाए मानो थी ही नहीं !

वैज्ञानिकगण इस बात से परेशान नहीं कि अमुक आत्महत्या क्यों की गयी, बल्कि इस बात से हैं कि आत्महत्या की कल्पना ही कहाँ और कब जागृत हुई। उनका अनुमान है कि किसी भी कुण्ठाग्रस्त अथवा असाध्य रोग से पीड़ित व्यक्ति का सूक्ष्मावलोकन निरन्तर किया जाता रहे, तो निश्चय ही कुछेक अनमोल जीवन तो बचाये जा सकेंगे। ऐसे व्यक्ति को कुण्ठा अथवा रोग-मुक्त करने के निश्चित प्रयास किये जाएँ तो किसी भी समाज अथवा राष्ट्र का जनबल व्यर्थ ही नष्ट होने से बचाया जा सकेगा। अनुमान है कि आत्महत्या का संकल्प आकस्मिक नहीं होता जो व्यक्ति बात-बात में ही आत्महत्या संकेत प्रदर्शित करता है, वह उचित उपच के अभाव में अधिक से अधिक तीन मास आत्महत्या कर गुजरता है।

अतः आवश्यकता इस बात की है अन्याय, अतृप्ति, असमानता और पक्षप आदि तत्त्वों को अपने परिवार और सम से उसी सतर्कतापूर्वक दूर रखा जाए जि प्रकार प्लेग और चेचक से भय खाया जा है। पुत्र हो या पुत्रवधू, पत्नी हो या पु वह जिस क्षण से कुण्ठा और हीनभावना लक्षण प्रकट करे, उसी क्षण से मानव तथा मनोवैज्ञानिक ढंग से स्नेह और सह भूति से उन लक्षणों को उखाड़ फेंकने अभियान खड़ा कर दें और संगठित प्रय द्वारा उन विकट शत्रुओं को इस निर्दयता मार भगाएँ जिस प्रकार किसी अदृष्ट की चीरफाड़ कराने में हम तनिक भी से काम नहीं लेते। आत्महत्या मरने के लिए तो अपराध है ही (ऐसा जो भी न किया जा सके !) किन्तु प्र अपराध और उत्तरदायित्व का भार तो चारों ओर की परिस्थितियों और उन परिस्थितियों को खड़ा करने सम्बन्धित व्यक्तियों पर ही रहता है।

टेलीविजन में रंगारंग

जर्मन वैज्ञानिक इस तैयारी में हैं कि आगामी तीन वर्षों के अन्दर ही आपको टेलीविजन पर मूल रूप के रंगीन चित्र प्रसारित कर दिखायें। तब आप दूर विदेशों के कलाकारों को उनकी मूल रंग-बिरंगी वेशभूषा में ही टेलीविजन पर देख सकेंगे। टेलीविजन पर स्याह-सफेद की अपेक्षा रंगीन प्रसारण अत्यधिक जटिल है। अतः स्याह-सफेद के प्रसारण में प्रचलित वर्तमान विभिन्नताएँ मिटाकर सर्वदेशीय समानता-युक्त प्रणाली निर्धारित करना आवश्यक होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

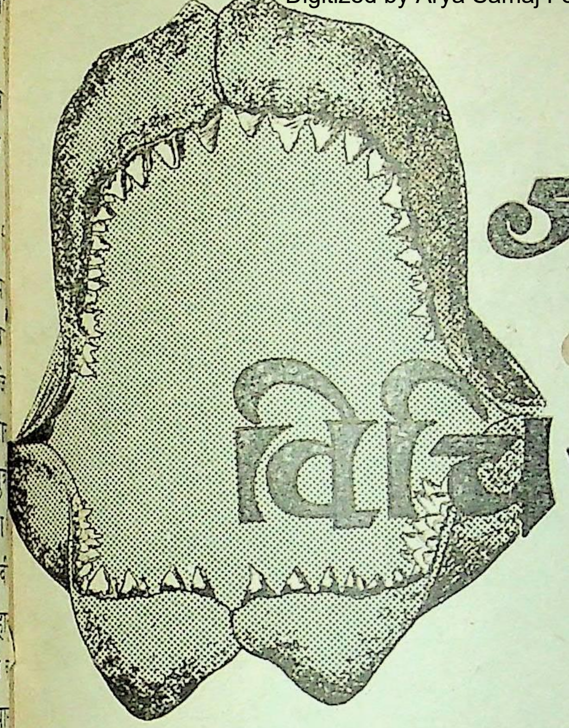

जन्तुओं के विचित्र दांत

जगदीशप्रसाद अग्रवाल

'हाथी के दाँत खाने के और, दिखाने के और' प्रसिद्ध लोकोक्ति है। अतः प्राणी-जगत में दाँतों का उपयोग खाने के अतिरिक्त अन्य कार्यों में भी किया जाता है। वह कथा पुरानी हो चुकी जिसमें कहा गया है कि एक चूहे ने अपने सिंह मित्र को दाँतों की सहायता से शिकारी के जाल से मुक्त किया था। चूहे के दाँतों की करामात का आधुनिक संस्करण तो कुछ ही वर्ष पहले वह मृत्युंजय चूहा हो गया जिसने साँप द्वारा निगले जाने पर भी हिम्मत नहीं हारी और साँप का पेट ही फाड़कर मुक्त हो गया।

मनुष्य दाँतों का उपयोग भोजन चबाने में करते हैं। नन्हें बालक खेल-खेल में लड़ाई हो जाने पर झगड़े का निपटारा इन्हीं से करते हैं। वन्य पशु शिकार को चीरने-फाड़ने में दाँतों से काम लेते हैं। बिल्ली आश्चर्यजनक कोमलता से अपने बच्चों को दाँत द्वारा ही पकड़कर इधर से उधर ले जाती है। इसी प्रकार सर्प शिशु अपने उस अनोखे दाँत द्वारा ही अण्डे को चीरकर बाहर आता है, जो तत्पश्चात् शीघ्र ही झड़ भी जाता है। वालरस (walrus) नामक समुद्री घोड़ा तो चलता ही दाँतों की सहायता से है!

हिप्पोपोटेमस के विकराल दाँत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

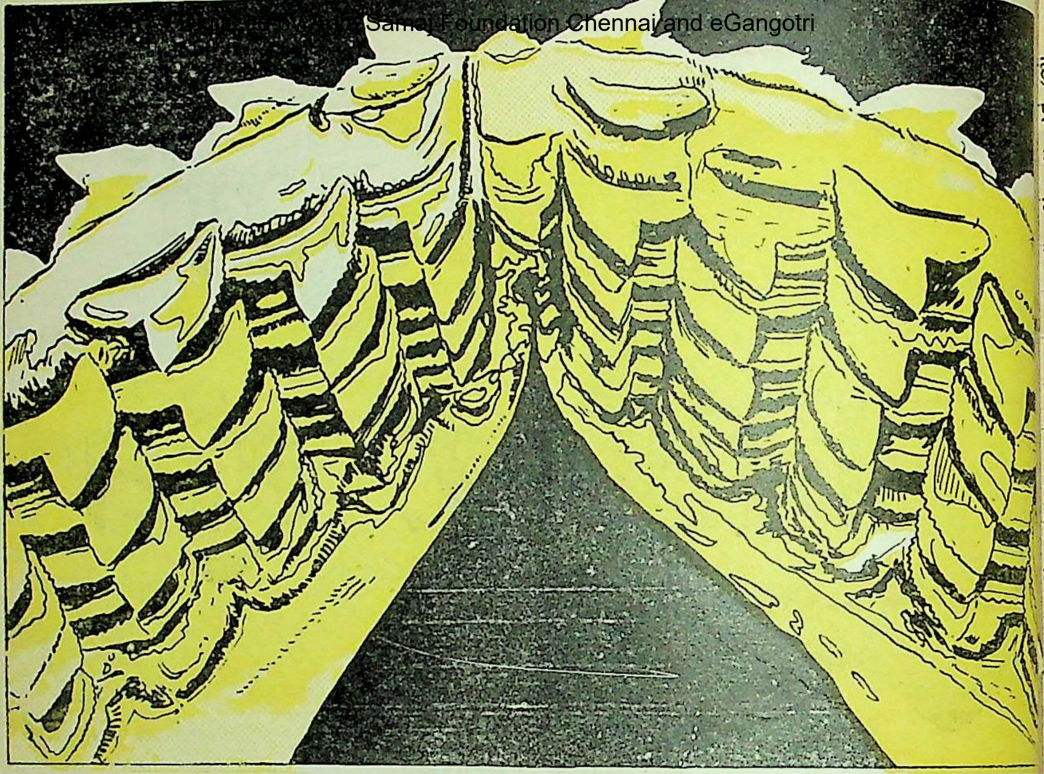

टाइगर शार्क मछली का अक्षय दंत-भण्डार—एक टूटा नहीं कि दूसरा मौजूद !

मेंढक के मुँह में केवल ऊपर के जबड़े में एक पंक्ति दाँतों की होती है जो मुँह में आये हुए शिकार को बाहर निकलने से रोकते हैं। इसी के जाति-भाई टोड तो निरे बेदांती (बिना दाँत के) होते हैं। आरा मछली (saw fish) का लम्बा नुकीला मुँह ही आरी जैसे दाँतों से युक्त होता है।

नेरीस (nereis) नामक समुद्री जन्तु के तो मुँह में नहीं, पेट में दाँत होते हैं। एक ओर चींटी, टिड्डे और झींगुर आदि के दाँत होते ही नहीं, तो दूसरी ओर सीपी और घोंघे में हजारों की संख्या में पंक्तिबद्ध दाँत होते हैं। सी-हार्स (sea horse), पाइप फिश (pipe fish) तथा एसीपेन्सर (acipencer) जैसी मछलियों में भी दाँत नहीं होते। इनकी त्वचा पर उभरे हुए शल्क (scales) ही दाँतों का काम देते हैं। वे शल्क पट्टिका (placoid scales) तथा कुण्डल (cycloid scales) रूप में होते हैं। इसी प्रकार कछुए भी दंतहीन होते किन्तु उनके जबड़े इतने पैने और मज़ होते हैं कि सख्त से सख्त चीज भी उ आगे नहीं ठहर पाती। टर्न स्टर्ना जाति पक्षियों में केवल भ्रूण-दन्त ही देखे गये

स्तनपायी प्राणियों में प्रायः दो बार द आते हैं। मनुष्यों में भी तो पहले आये के दाँत गिरने पर ही स्थिर दाँत आते कहीं-कहीं तो वृद्धावस्था में भी नये दर्शन दे जाते हैं! व्हेल के जीवनकाल एक ही बार दाँत आते हैं। कुछ प्रा को दाँत देते रहने में प्रकृति काफी उ है। उदाहरणार्थ, सर्प का एक भी विष टूटा कि दूसरा नया उपस्थित, और मे का एक दाँत गिरा कि दूसरा मौज डाग फिश (dog fish) नामक मछली दाँतों की कई पंक्तियाँ होती हैं किन्तु बार में एक ही पंक्ति काम में आती है।

मेंढकों, मछलियों में दाँत जड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए न होकर मुखगुहा की अस्थियों से इस प्रकार जुड़े रहते हैं जैसे कंघी के दाँते। सर्पों आदि के दाँत मांसपेशियों के सहारे लटके रहते हैं जो आवश्यकता पड़ने पर अन्दर की ओर मोड़कर रखे जा सकते हैं। मगरमच्छ के दाँत जबड़ों के गड्ढों में जमे रहते हैं। उनमें जब कभी खाद्य कण अटक जाते हैं तो विशालकाय मगरराज को नन्हीं चिड़िया की सहायता लेनी पड़ती है जो, मानो अपने घोंसले में बैठी हो उस निर्भीकता से, मगर का दन्तमंजन करके उन कणों से अपना पेट भी भर लेती है। यों, दोस्ती की दोस्ती और साथ ही मजदूरी की मजदूरी भी बन जाती है।

ऊपर गिनाये हुए अनेक उपयोगों के अतिरिक्त दाँतों का एक अन्य भी महत्त्वपूर्ण उपयोग सृष्टि के विकास का क्रमिक अध्ययन है। दाँत और अस्थियाँ ही ऐसी वस्तुएँ हैं जो युग-युगों तक सुरक्षित रखी जा सकती हैं। प्रकृति के संग्रहालय तो जीवाश्म (fossils) ही हैं। अतः आज भी फासिल के अध्ययन से जीव-विकास की बड़ी रोचक शृंखलाएँ हाथ आती हैं। उन्हीं से ज्ञात होता है कि प्रागैतिहासिक काल जैसे दाँत तो आज हैं ही नहीं। क्या प्राणी, क्या मानव, दाँत का यह स्वरूप ही नहीं था जो आज हमारे सामने है। आदि-मानव के दाँत आज के हमारे दाँतों से कहीं बड़े और विचित्र रचना के थे। यही हाल प्राणियों के दाँतों का भी था। वृहत्काय हाथी जैसे

अफ्रीकन विषधर के विषदंत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशाल जीवों के बर्फ में दबे फासिल आज भी मनोरंजक सामग्री प्रस्तुत करते हैं।

उस काल में पक्षियों के भी दाँत होते थे। आज सामान्यतः पक्षियों में दाँत नजर नहीं आते। उदाहरणार्थ, आजकल के कबूतर जैसा उन दिनों का आर्क्सोटाइरेक्स पक्षी लम्बे जबड़े और तीखे दाँतोंयुक्त होता था।

प्रकृति ने प्राणी-प्राणी के दाँतों में

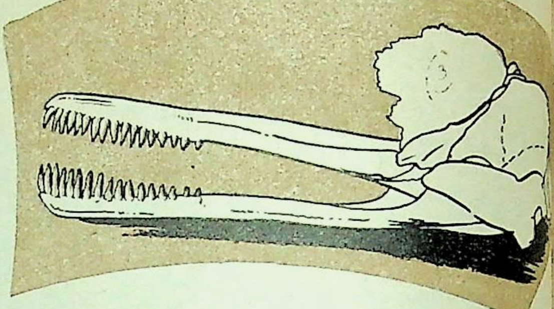

केकड़ा-भक्षक सील के ये दाँत सर्वथा उपयुक्त हैं केकड़े जैसे कठोर शिकार को चबा सकें

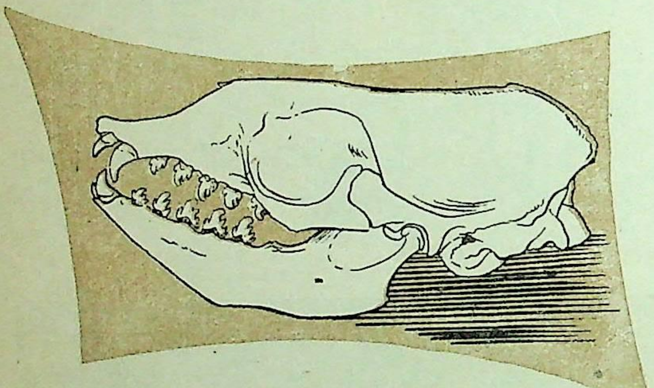

रहस्यों से भरपूर है कि तो दाँत बिलकुल ही नदा और कहीं एक ही मुँह में कि गिनने भी कठिन, अ एक मुँह और १४ हजार दाँ

साइबेरिया से प्राप्त प्रागैतिहासि विशालकाय प्राणी का ४½ मी लम्बा दाँत लन्दन में सुरक्षित है

ऐसे ही सार्थक दाँत गंगा-निवासी पारपाइज के हैं जो छलनी के रूप में हैं और नन्हें, फिसलने जीवों को निकलने नहीं देते

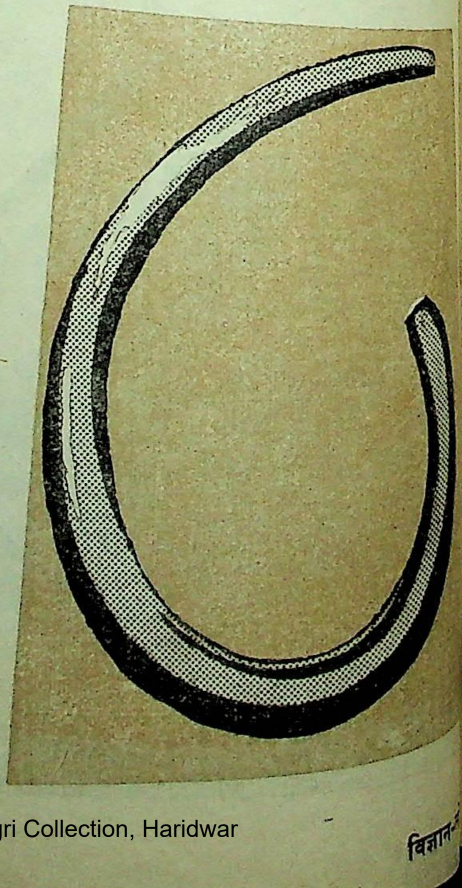

बड़ी सूझ-बूझ से विभिन्नता रखी है। जिसका जैसा काम, वैसे उसके दाँत। एक के दाँत दूसरे का काम नहीं कर सकते। मांसाहारी पशुओं के दाँत भोजन को वह रूप नहीं दे सकते जो शाकाहारी के लिए आवश्यक है। इसी प्रकार भेड़-बकरियाँ अपने दाँतों से मांसाहार नहीं चबा सकतीं। मनुष्य दोनों आहारों का अभ्यस्त है। अतः इसके लिए कहीं कठिनाई नहीं पड़ती। चूहे, गिलहरी, छछूँदर, नेवले तथा बीवर जैसे बिलकारी जीवों (rodents) के दाँत कुतरने योग्य काफी पैने होते हैं और टूटनेवाले दाँतों के स्थान पर नये दाँत आते रहते हैं।

आप देखेंगे कि प्रकृति भी कितने गूढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाइड्रोजन की उपयोगिता

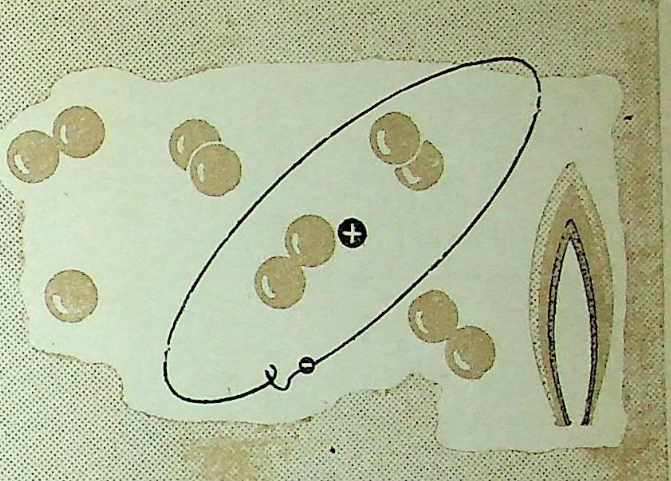

आदित्यगोपाल झिंगरन

वैसे तो १६वीं शताब्दी में वैज्ञानिक पैरासेलसस् को यह ज्ञात हो चुका था कि धातु को अम्ल में घोलने पर एक ज्वलनशील गैस प्राप्त होती है, किन्तु कैवेन्डिश ने, जिसे विद्वानों में धनी और धनिकों में विद्वान कहा गया है (जीवनी के लिए देखें अप्रैल ६२ का अंक), उस गैस का विधिवत् अध्ययन किया था। उस समय तो किसी को यह कल्पना भी न रही होगी कि हाइड्रोजन द्वारा उत्पन्न ऊर्जा में संसार को नष्ट करने की क्षमता है। आजकल इस गैस का महत्त्व इसलिए अधिक है कि यह प्रयोगशाला के सामान्य कार्यों से लेकर परमाणु-ऊर्जा तक के उत्पादन में काम आती है।

गुब्बारे

इस गैस का उपयोग गुब्बारा उड़ाने से प्रारम्भ हुआ था। खेल-खिलौने वाले रंग-बिरंगे गुब्बारे तो बच्चों को भी बहुत प्रिय हैं जो इनमें गैस भरवाकर उड़ाते फिरते हैं। मानव-वाहक बड़ा गुब्बारा सर्वप्रथम १७८३ में एस. सी. चार्ल्स ने बनाया था और दो घण्टे की अपनी पहली उड़ान से लोगों को चकित कर दिया था। तत्पश्चात् तो लोगों को बहकाने के लिए कुछ उड़ाके गुब्बारों में उड़कर ऊपर से विभिन्न वस्तुएँ बरसाते थे। लोग अपने अन्धविश्वास में उन्हें ईश्वर का प्रसाद बरसता समझते थे।

आज इन गुब्बारों के अनेक वैज्ञानिक उपयोग हैं। उनमें वायुमण्डल का अवलोकन प्रमुख है। वायुदाबमापी (barometer), तापमापी (thermometer) तथा रेडियो सांदे (radio sonde) जैसे यन्त्र गुब्बारे में रखकर उड़ाये जाते हैं। वहाँ से वे वायुमण्डल की वस्तुस्थिति का वर्णन रेडियो द्वारा प्रसारित कर देते हैं। इससे वायुयान के यातायात तथा अन्यान्य भौगोलिक स्थितियों की जानकारी में बड़ी सहायता मिलती है।

युद्धकाल में भी गैसीय गुब्बारे बहुत उपयोगी सिद्ध हुए थे। द्वितीय विश्व युद्ध में जापानियों ने चमकीले कागज (silver paper) के बने हुए गुब्बारों में विस्फोटक पदार्थ भरकर उन्हें प्रशान्त महासागर पर छोड़ा था। निश्चित समय पर वे विस्फोट करते थे। उन गुब्बारों में हाइड्रोजन भरी रहती थी और यह खतरा बना ही रहता था कि आकाशीय विद्युत से कभी भी उनमें आग लग सकती थीं। अतः अब हाइड्रोजन के स्थान पर कोल गैस अथवा हीलियम-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिश्रित हाइड्रोजन का उपयोग किया जाता है।

हाइड्रोजनीकरण

वानस्पतिक तेलों का हाइड्रोजनीकरण (hydrogenation) इन दिनों बहुत प्रचलित है। यही हमारा वनस्पति घी है। दिनोंदिन बढ़ती हुई आबादी के कारण शुद्ध घी एक समस्या बनकर रह गया है। शुद्ध घी तो आज आसमान पर चढ़े हुए भावों के कारण जनसाधारण की पहुँच से बाहर है। अतः कुछ अंशों में उसकी पूर्तिस्वरूप यह वनस्पति घी प्रचलित किया गया है। आज इसी उद्योग के सहारे लाखों-करोड़ों व्यक्तियों की रोजी-रोटी चल रही है। विदेशों में भी पिछले ६०-७० वर्षों से शुद्ध मक्खन की जगह कृत्रिम मक्खन मार्गेरीन (margarine) का प्रचलन है।

यूरोप में पेट्रोल की कमी है। उसके स्थान पर कोयले से गैसोलीन बनाने की अनेक विधियाँ काम में लाई जाती हैं। उनमें फिशर ट्राप की विधि (Fischer Trop's synthesis) उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त, अनेक मछलियों से प्राप्त तेल तथा चर्बी ज्यों की त्यों खा सकने योग्य तो होती नहीं अतः अधिकतर उनका उपयोग साबुन उद्योग में किया जाता है। उसमें भी उनका हाइड्रोजनीकरण इसलिए आवश्यक है कि उनकी दुर्गन्ध नष्ट की जा सके। वानस्पतिक तेलों से प्राप्त द्रवीय कार्बनिक अम्लों को भी हाइड्रोजनीकरण के पश्चात् मोमबत्ती बनाने में उपयोग करते हैं।

हाइड्रोजन भरे गुब्बारे में अमरीका के एक उड़ाके ने १७९३ में सर्वप्रथम १९३८ मीटर की उड़ान भरी

आक्सी-हाइड्रोजन ज्वाला

हाइड्रोजन को शुद्ध आक्सीजन से संयुक्त कराने पर अति तीव्र ताप, २०००°C तक का, प्राप्त होता है। उस ताप का उपयोग आक्सी-हाइड्रोजन ज्वाला के रूप में करते हैं। इस ताप पर अधिकांश धातुएँ पिघलती हैं। यह कार्य सामान्य अग्नि द्वारा सम्भव नहीं। अतः इस ज्वाला का उपयोग वेल्डिंग अर्थात् धातुओं को जोड़ने में किया जाता है। और भी अधिक ताप के लिए हाइड्रोजन की अपेक्षा ऐसीटिलीन गैस का प्रयोग किया जाता है। फिर भी कुछ विशिष्ट प्रयोजनों में तो हाइड्रोजन ही उपयुक्त ठहरती है। उदाहरणार्थ, कृत्रिम मानिक (rubies) सीसे तथा एल्यूमिनियम की चद्दरें और कार्बन रहित मिश्रधातुएँ (alloys) बनाने में आक्सी-हाइड्रोजन ज्वाला ही उत्तम रहती है, अन्यथा ऐसीटिलीन के प्रयोग में कार्बन शोषित हो जाने की सम्भावना रहती है।

हाइड्रोजन गैस को जब टंगस्टन के विद्युदाग्र द्वारा विद्युत्चाप में प्रवाहित किया जाता है तब अति उच्च ताप पर हाइड्रोजन के अणु, परमाणुओं में विघटित हो जाते हैं। वे परमाणु वायु के संसर्ग में बहुत ही तीव्र ज्वाला उत्पन्न करते हैं। इसका भी उपयोग अनेक उद्योगों में किया जाता है।

धातुकर्म में हाइड्रोजन

हाइड्रोजन में आक्सीजन से संयोग करने का गुण तो है ही, अनेक आक्सीजन युक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यौगिकों में से आक्सीजन मुक्त कर देने की भी सामर्थ्य इसमें है। आक्सीजन पृथक् करने की विधि को अवकरण (reduction) कहते हैं। उदाहरणस्वरूप, सुर्ख तप्त कापर आक्साइड पर जब हाइड्रोजन प्रवाहित की जाती है तब ताँबा धातु आक्सीजन से मुक्त हो जाती है। इसी प्रकार अन्य धातु आक्साइडों से भी धातुएँ आक्सीजन से मुक्त हो जाती हैं।

बहु उपयोगी युगल

हाइड्रोजन और नाइट्रोजन का युगल बहु उपयोगी है। निर्धारित अवस्था में दोनों के संयोग से अमोनिया गैस बनती है। संश्लेषित विधि से अमोनिया बनाने का आविष्कार जर्मन वैज्ञानिक हेबर ने प्रथम विश्व युद्ध के दौरान किया था। नाइट्रेट प्राप्त करने के बाहरी साधन जब जर्मनी के लिए अप्राप्य हो गये तब हेबर की विधि ने ही उस संकट काल में जर्मनी की रक्षा की थी। इस विधि से प्राप्त अमोनिया को नाइट्रिक अम्ल में परिवर्तित कर लिया जाता है। यों अमोनियम नाइट्रेट नाइट्रिक अम्ल तथा पिक्रिक अम्ल युद्धोपयोगी तीव्र विस्फोटक T.N.T. तथा डाइनेमाइट आदि बनाने में काम आते हैं।

हाइड्रोजन से ही प्राप्त अमोनियम सल्फेट तथा अमोनियम फास्फेट का उपयोग उर्वरक तथा खादें बनाने में अधिकता से होता है। दवाएँ बनाने में अमोनियम कार्बनेट, ड्राइ बैटरियाँ (dry cells) बनाने में अमोनियम क्लोराइड तथा अमोनिया गैस बर्फ एवं प्रशीतन अर्थात् रेफ्रिजरेशन में काम आती है।

हाइड्रोजन बम

हाइड्रोजन का सबसे विनाशकारी उपयोग हाइड्रोजन बम के रूप में किया जा सकता है। सन् १९४० से अमरीकन वैज्ञानिक इस दिशा में कार्यरत थे। प्रयोगों के पश्चात् उन्होंने ज्ञात किया कि इसके द्वारा तो परमाणु बम से भी हजारों गुना अधिक शक्तिशाली बम बनाया जा सकता है। इसके लिए हाइड्रोजन के दो परमाणुओं के नाभिकों (nuclei) को मिलाया जाता है। इस क्रिया में और परमाणु बम के सिद्धान्त में अन्तर है; क्योंकि परमाणु बम के लिए तो परमाणु विखण्डन (fission) कराना पड़ता है। हाइड्रोजन की दो अन्य किस्में ट्रिटियम (tritium) तथा ड्यूटेरियम (deuterium) भी हैं। इनमें से ट्रिटियम के दो परमाणुओं को जब अत्यन्त उच्च ताप पर ले जाते हैं तब हीलियम के परमाणु का समस्थानिक बनता है। साथ ही न्यूट्रान भी बनते हैं। इस क्रिया में इतनी ऊर्जा निकलती है कि उसकी तुलना में हिरोशिमा पर गिराया गया परमाणु बम कुछ भी नहीं। हाइड्रोजन बम तो सारे संसार को भस्म कर सकता है!

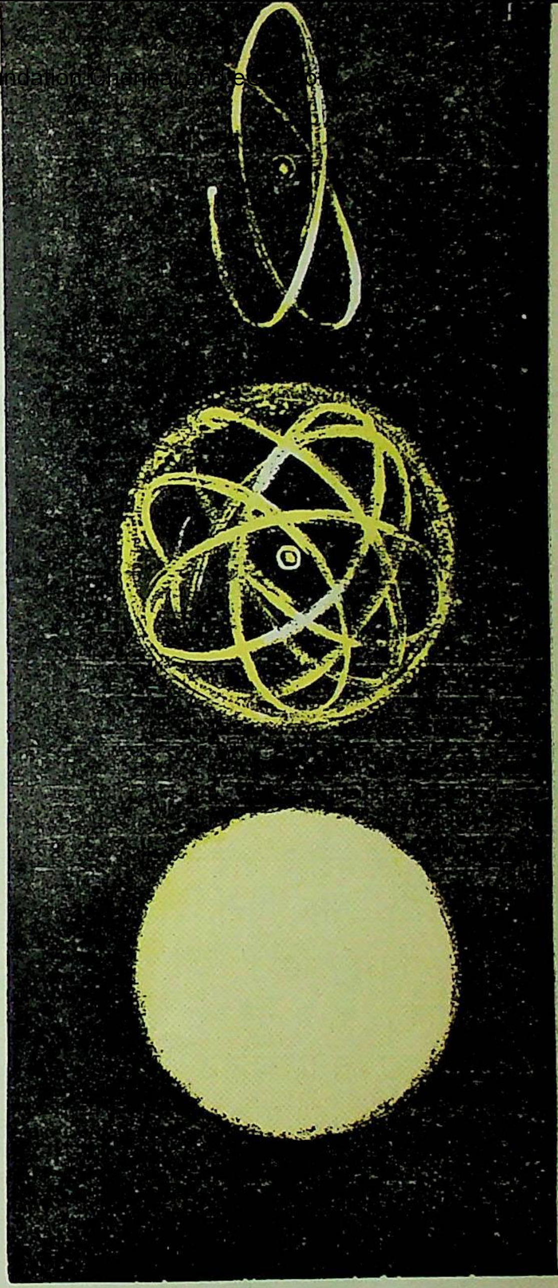

हाइड्रोजन-परमाणु का इलेक्ट्रान चारों ओर इतनी तेजी से चक्कर काटता है कि परमाणु पर एक ठोस खोल-सी प्रतीत होती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धीरे बहो नदिया

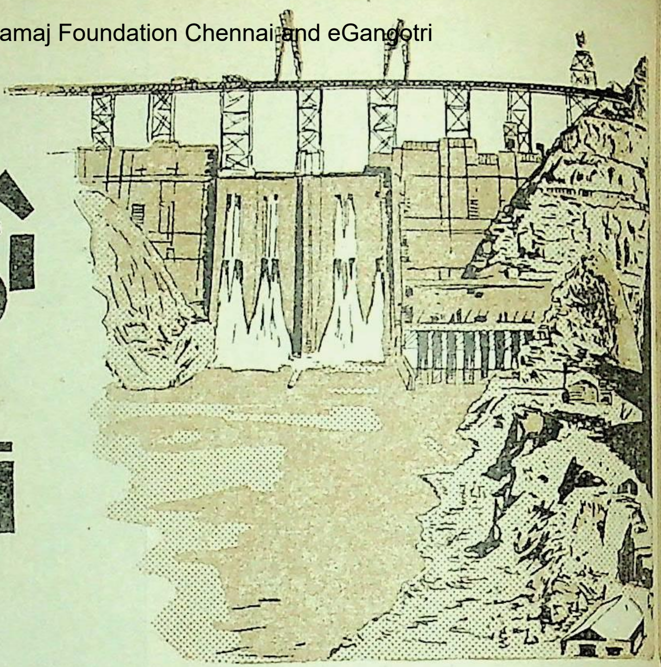

राजेन्द्रप्रसाद खन्ना

बिफरती हुई नदी के बारे में ही यह कहा गया था—'धीरे बहो नदिया, धीरे बहो; हम उतरहिं पार।' उन दिनों न तो भाखरा-नांगल थे, न सक्खर बाँध था, न अमरीका का संसार-प्रसिद्ध हूवर बाँध। उफनते नद और बिफरती नदियाँ जब अपने स्वभाव पर आ जाती थीं तब उन्हें मनाने के लिए क्या कुछ नहीं करना पड़ता था! जो नदी पिछले दिन रक्षिका बनी हुई थी, वही रातोंरात भक्षिका का चण्डी रूप धारण कर लेती थी।

पर्वत से सागर तक

आज विज्ञान के द्वारा नदी के धारा-प्रवाह का, जल-परिमाण का, प्रवाह की दिशा और वेग का तथा समय और काल का अधिकांशतः सही अनुमान लगा लेना सम्भव है। सर्दियों के उतार और वसन्त की शुरुआत से ही उन वैज्ञानिकों का काम शुरू हो जाता है जिन्हें नदियों को नियन्त्रण में रखना है। मैदान में रहने वालों को उन दिनों मौसम काफी सुहावना मालूम होता है लेकिन पहाड़ों पर उन दिनों भी बर्फ का भरपूर साम्राज्य रहता है। बर्फ की ७- मीटर की मोटी चादर पहाड़ी ढलानों और घाटियों को घेरे रहती है। वही बर्फ पिघ- पिघलकर पहाड़ी झरने और छोटी-छोटी सरिताएँ बनकर अन्ततः मिल-जुलकर बड़ी नदी में मिल जाती है और यों नदी में बा- आ जाती है। वह अनियंत्रित पानी क्या विनाश कर सकता है यह सब विदित है।

इसी का पहले से ही प्रबन्ध करने के लिए इंजीनियरों का एक दल बर्फ से घाटियों में चक्कर लगाना शुरू कर देता है। कुछ समय पहले तक उनके लिए यों घूम- और निश्चित समय पर वापस अपने शिवि- में लौट जाना सम्भव नहीं था। कैम्प-द- कैम्प बढ़ते-बढ़ते उन्हें १०-१२ दिन स- ही लग जाते थे। आज हेलिकाप्टर द्वा- यह सम्भव है कि सुबह खा-पीकर निक- दिन भर काम किया और दिन ढलते कैम्प में लौट आये। उस टोली को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जल-परिमाण - निरीक्षक - दल (Hydrographers) कहेंगे। यह दल अपनी गणनाओं तथा मापक-यंत्रों द्वारा कह सकेगा कि इस वर्ष अनुमानतः बर्फ के उस खजाने में कितना पानी छिपा है; कितना पिघलकर नदी में कितनी बाढ़ लाएगा, कितना पानी पेड़-पौधों और वनस्पतियों के द्वारा हवा में उड़ जाएगा और कितना धरती सोख लेगी। उन्हें यह भी हिसाब लगाना होता है कि आसपास के मैदानों में कृषि के लिए कितना पानी उस पहाड़ी नदी से पहुँचाया जा सकता है तथा बाँध के साथ बनने वाले पावर हाउस के लिए कितना पानी बचेगा।

जब बर्फ पिघलती है

बर्फ पिघलना शुरू होते ही पहाड़ी झरनों में होड़ लग जाती है। झरने बढ़-चढ़ कर नदी को उफना देते हैं। बिफरती हुई नदी जब धुआँधार आगे बढ़ती है तब एका-एक अपने आगे एक बाँध की दीवार को पाकर ठहर जाती है। यहीं पर उसका विभाजन होता है। आवश्यकतानुसार उसका कुछ भाग एक विशाल, गहरी झील में भरने दिया जाता है और शेष भाग उस बाँध के सुरक्षा-द्वारों (safety gates) में से अथवा अतिरिक्त बहाव (overflow) के मार्ग में से निकलने दिया जाता है। झील में भरा हुआ पानी विशाल पाइपों (penstocks) द्वारा नीचे पहुँचाया जाता है। नीचे के बिजलीघर में बड़े-बड़े टर्बाइन के पंखों को घुमाने का काम यही पानी करता है। टर्बाइन के पंखे घूमते ही जेनरेटर चालू हो जाता है और उससे उत्पन्न बिजली सैकड़ों मील के विस्तार में कारखानों को तथा कोठियों को शक्ति और प्रकाश पहुँचाती है।

इतना काम करा लेने के बाद नदी को थोड़ा विश्राम दिया जाता है ताकि वह धीरे-धीरे आगे बढ़े। कुछ ही दूर जाने पर उसे पुनः अन्य छोटे-छोटे बिजलीघरों में से निकलना पड़ता है। उस यात्रा के मध्य उसमें से नहरों के रूप में कई शाखा-प्रशाखाएँ निकाल ली जाती हैं। आज नहरें न होतीं तो सब ओर मरुस्थल ही नजर आता। जहाँ पर खुली नहरें बनाना सम्भव नहीं वहाँ बड़े-बड़े पाइपों (aqueducts) द्वारा मीलों दूर तक पानी पहुँचाया जाता है। बीच-बीच में उन पाइपों में बन्द पानी को भी एक कुण्ड के रूप में खुला रखकर पुनः पाइप में प्रविष्ट करा दिया जाता है जिससे ताजी हवा, तथा धूप उसे मिल सके।

बाँध निर्माण की आवश्यकता

समय के साथ ही यह आवश्यकता बढ़ती जा रही है कि अधिक से अधिक बिजली का उत्पादन हो और अधिक से अधिक सिंचाई द्वारा खाद्य-उत्पादन बढ़ाया जाए। बाँध की मुख्य तीन उपयोगिताएँ हैं: (१) विनाशकारी बाढ़ों की रोकथाम, (२) सूखे दिनों के लिए जल-संग्रह तथा (३) विद्युत-उत्पादन। कुछ बाँध तीनों प्रयोजन के लिए, कुछ दो और कुछ एक ही उद्देश्य के लिए बनाये जाते हैं। बाँध कैसा भी बनाया जाए, उसके उपयुक्त स्थल का चुनाव सबसे महत्त्वपूर्ण काम है। यही काम उस इंजीनियरिंग दल का पहला कदम है। सिर्फ बाढ़ रोकने के लिए बाँध बनाना हो तो शहर के नजदीक, नदी के

बनने की तैयारी में बाँध

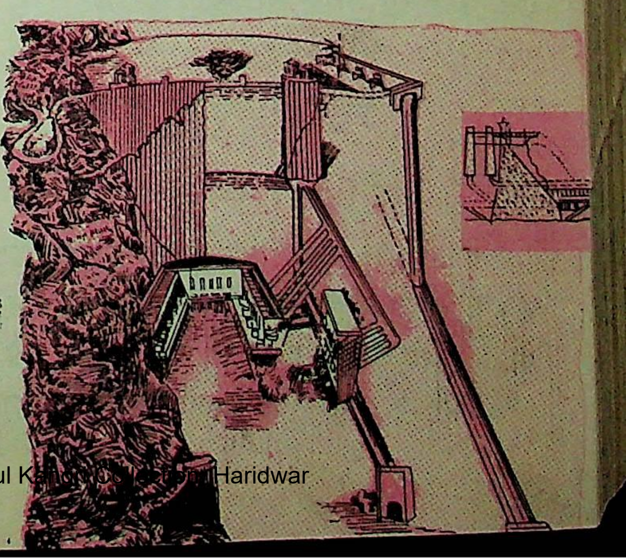

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

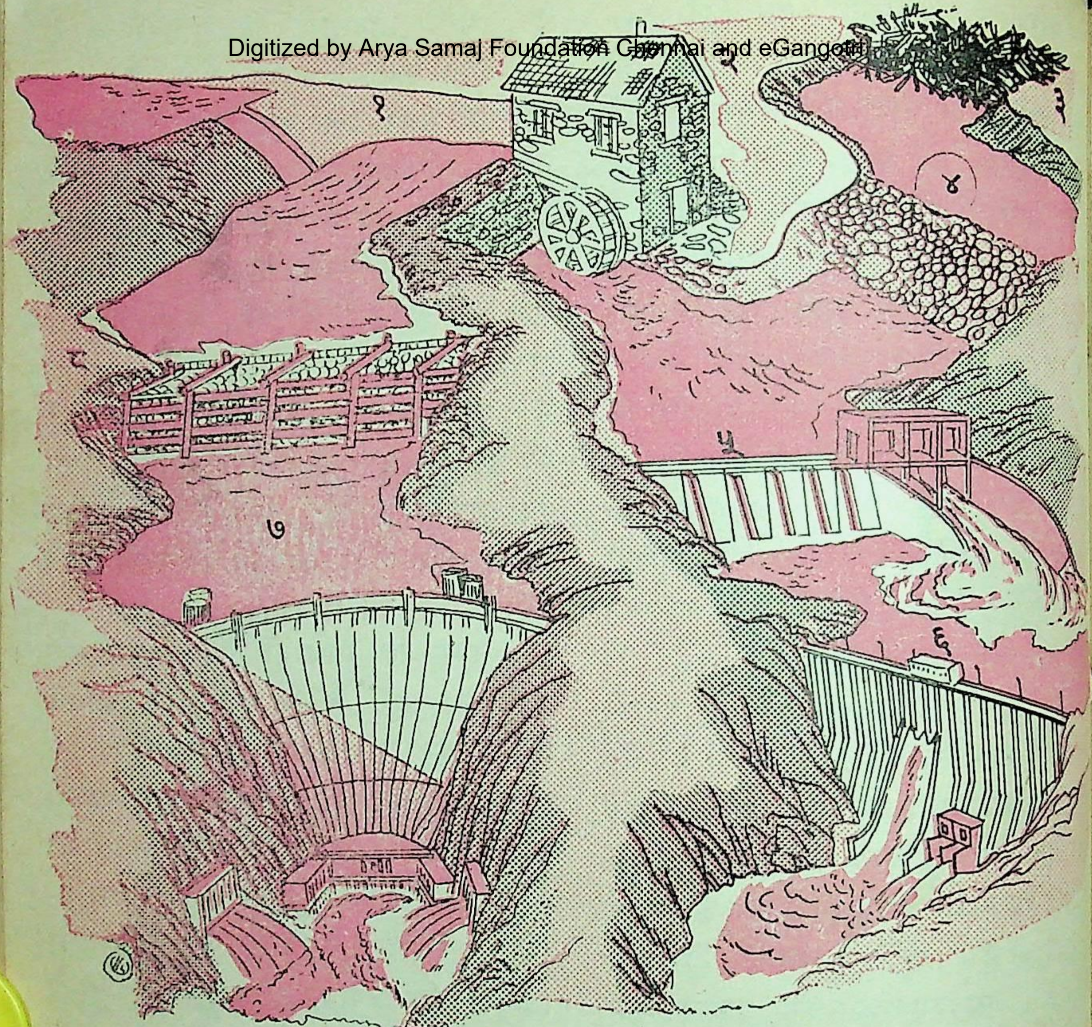

भाँति-भाँति के बाँध—**१. मिट्टी के भराव का, २-३. बीवर निर्मित, ४. ढोकों के भराव का ५. अनेक खंभों युक्त, ६. अनेक मेहराबों का, ७. बड़ी मेहराब का**

किनारे कहीं भी बनाया जा सकता है। यदि विद्युत-उत्पादन का भी लक्ष्य है तो ऊँची पहाड़ी जगह चुननी होगी जहाँ से टर्बाइन के इंजन चलाने के लिए पानी काफी वेग से नीचे गिर सके। वे वहाँ की चट्टानों के नमूने भू-शास्त्रियों के पास इस परीक्षण के लिए भेजेंगे कि समूचे बाँध का भार तथा खिंचाव वे चट्टानें सह सकेंगी या नहीं।

बाँध की भिन्न-भिन्न किस्में

तत्पश्चात् यह निर्णय करना पड़ेगा कि बाँध कितना चौड़ा, मोटा, ऊँचा और कुल कितना भारी होना चाहिए। बाँध से सम्बन्धित झील की दीवारें बाँध पर अपना दबाव डालेंगी और बाँध स्वयं अपना दबाव उन चट्टानों पर डालेगा जिनके सहारे उसे खड़ा होना है। मुख्यत: बाँध निम्न किस्मों के बनते हैं: (१) मिट्टी भरकर (earth-filled), (२) ढोके भरकर (rock-filled), (३) ईंट-चूने के ठोस (solid masonry), (४) ईंट-चूने के पोले (hollow masonry), (५) सीधे या शंकु-आकार के (flat or cone shaped), तथा (६) मेहराबदार (arched)।

इनमें मिट्टी के भरावदार बाँध सबसे कम खर्चीले हैं किन्तु ये अधिकतर वहीं सुविधाजनक हैं जहाँ अधिक ऊँचाई की आवश्यकता न हो और मिट्टी खोदने तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ढोने-भरने आदि के भारी आधुनिक यन्त्र वहाँ सरलता से पहुँच सकें। पहाड़ी जगहों पर कंक्रीट का बाँध बनाना उपयुक्त है। सपाट दीवार की अपेक्षा मेहराबदार बाँध बनाने में यद्यपि सामान कम लगता है लेकिन मजदूरी बहुत अधिक लगती है।

बाँध की सुरक्षा

बाँध बन जाने पर उसकी सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध अत्यन्त आवश्यक है। बाँध के पश्चात् धीरे-धीरे कंक्रीट सूखने के समय रासायनिक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप काफी ताप उत्पन्न होता है। इस ताप से बाँध की रक्षा करने की भी पूर्व व्यवस्था करनी पड़ती है। अतः कंक्रीट के बीच-बीच में स्टील के पाइप फिट किये जाते हैं जिनमें से ठण्डा पानी आवश्यकतानुसार बहता रहता है। बाँध की ऊपरी सतह को अनियमित ताप आदि से बचाने के लिए मिट्टी के बाँध पर घास वगैरह उगाई जाती है तथा कंक्रीट की सतह पर एस्बेस्टस (asbestos) को अल्यूमिनियम पेंट में मिलाकर लगा दिया जाता है।

दलदल का प्रश्न

बाँध के निर्माण में दलदल भी एक समस्या उत्पन्न कर देता है। नदी अपने साथ रेत,

पानी के वेग से चुटीले टर्बाइन के पंखों को समय-समय पर सँभालना पड़ता है

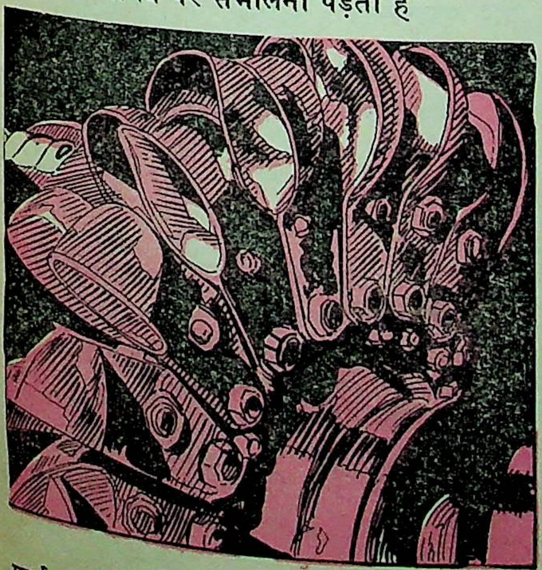

मेहराबदार बाँध में सामान कम, मजदूरी अधिक लगती है

मिट्टी, कीचड़, घास-फूस, तथा तमाम कूड़ा-करकट घसीटे चलती है। यह दलदल बाँध के निकट आकर बड़ी कठिनाई पैदा कर देता, झील के तले में बैठ-बैठकर काफी जगह घेर लेता है और यदि यह खिड़कियों में से यों ही गुजरता रहा तो पानी के निकलने का मार्ग ही रोक देता है। इसके लिए कई बाँधों में जरा निचली सतह पर दलदल-निकास खिड़कियाँ (sluicing gates) बनाये जाते हैं जिनमें से अधिकांश दलदल निकल जाता है और साफ पानी ऊपर से बह जाता है। इसके विपरीत, कई बाँधों में कुछ ऊँची सतह पर केवल साफ पानी के लिए खिड़कियाँ रखते हैं जिससे दलदल युक्त पानी नीचे ही बैठा रह जाए।

पानी की चोट तथा उसमें घुले हुए मिट्टी-मसालों की प्रक्रिया टर्बाइन के पंखों को खा जाती है। वेग से टकराते हुए पानी का ताप काफी बढ़ जाता है और पानी उबलने लगता है। वह ताप तथा पानी में घुले हुए रासायनिक पदार्थ टर्बाइन के पंखों को हानि पहुँचाते हैं। अतः बीच-बीच में उन्हें ठीक करना पड़ता है।

इस प्रकार बाँध बनाकर विद्युतोत्पादन, सिंचाई तथा परिवहन आदि अनेकानेक उपयोगी कार्य लिये जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचित्र संसार

गाय के मुँह में सोने के दाँत

वाशिंगटन (अमरीका) के निकट सोने की खानों के प्रदेश की यह बात है। वहाँ के निकटवर्ती घास के मैदानों पर स्वर्णधूलि की बारीक गर्द खानों से उड़-उड़कर छायी रहती है। उन मैदानों में चरती हुई गायों के दाँत प्रायः ही स्वर्णावरित हो जाते हैं। दाँतों का कैलसियम स्वर्णकणों से संयुक्त होकर सोने की स्थायी परत दाँतों पर जमा देता है। कुछेक ऐसे स्वर्ण-दाँतोंयुक्त गायों के जबड़े वहाँ संग्रहालय में रखे भी हैं !

७१ वर्षों तक दिन-रात जागता रहा !

पेरिस का आर्मण्ड जेकस (१७९१-१८६४) ऐसा ही कुशल न्यायशास्त्री था जिसे 'न्याय की अक्षय मशाल' कहा गया है, अर्थात् न्याय की ऐसी ज्योति जो दिन-रात में एक क्षण के लिए भी न बुझ पाई। जेकस जब दो वर्ष का था, एक मेले की भीड़ में दुर्घटना वश दब-कुचलकर बेहोश हो गया था। मस्तिष्क की भीतरी गहरी चोट से काफी दिनों बाद पूर्णतः होश में आया, तब तक अपना पिछला इतिहास सब कुछ भूल चुका था। उस मस्तिष्क की चोट के कारण उसके निद्रा-तन्त्र ने ऐसी करवट बदली कि बाद के ७१ वर्षों तक पल भर के लिए भी सो न सका। निद्रा के अभाव ने उसे अस्वस्थ रखा हो, ऐसा भी नहीं। वह अपने जीवनकाल का अति प्रसिद्ध और प्रमुख न्यायशास्त्री था। इस प्रकार वह सशरीर ही न्याय की ऐसी मशाल था जो सचमुच ही ७१ वर्षों तक दिन और रात निरन्तर जलती रही !

...न भी ५०००० वर्ष पूर्व का चलन

आज भी हाथी ऐसा प्राणी है जो पालन-क्रिया के प्रारम्भिक काल में अपने पालने वाले की भाषा, चाहे कुछ भी हो, समझने से इनकार करता है। वह तो अपनी चिरपुरातन वही चीख सुनना चाहेगा जिसके द्वारा आदि-मानव, गुहा-काल के मानव ने सर्वप्रथम लगभग ५०००० वर्ष पूर्व उसे वश में किया था। उसके आगे चाहे जिस भाषा में बकना-झकना, चीखना-समझाना सब व्यर्थ है। आश्चर्य है कि बदलते हुए समय के साथ पाँच सौ शताब्दियों के बाद भी हाथी पुरानी चीख के लिए अपना मोह नहीं छोड़ सका है !

यहाँ बड़ा, छोटे से हारता है

चित्र में दिखाया गया बड़ा गुबरैला कीड़ा छोटे का पीछा कर रहा है। दोनों की जाति में अन्तर है और छोटे की विशेषता बड़े को मालूम नहीं। छोटा गुबरैला विस्फोटक वर्ग का है। यह उन विरले जन्तुओं में से है जो शत्रु से पीछा छुड़ाने के लिए अपनी बमवर्षक विशेषता का लाभ उठाते हैं। पूँछ के निकटस्थ अपने पृष्ठ भाग से तीव्र दुर्गन्धयुक्त ऐसा तीखा द्रव रह-रह कर उछालता है मानो कोई रिवाल्वर चल रहा हो ! बड़ा गुबरैला चकित और स्तम्भित रह जाएगा तब तक छोटा साफ निकल जाएगा !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्यु से भेंट—एक धड़ाका

प्रकृति में एक ऐसा विचित्र जीव भी जो मृत्यु से भेंट करता है तो एक विस्फोट साथ, यों ही गुपचुप नहीं। वह एक जल-व है और इस प्रकार आवाज करने के रण उसे स्टेन्टर (Stentor) कहते । मृत्यु का स्वागत वह एक विस्फोट के थ करता है।

ंच बनाम जूते का बाप

दक्षिणी-पश्चिमी सूडान, यूगाण्डा और ांगो के दलदली विस्तारों में पाये जाने वाले बगुले पाँच फुट ऊँचे हैं। इनकी चोंच की चित्रता से अरव निवासियों ने इन्हें 'जूते ा बाप' (*Abumarkub*) उपनाम दे रखा । चोंच दूर से एक वृहदाकार जूता ही खती है।

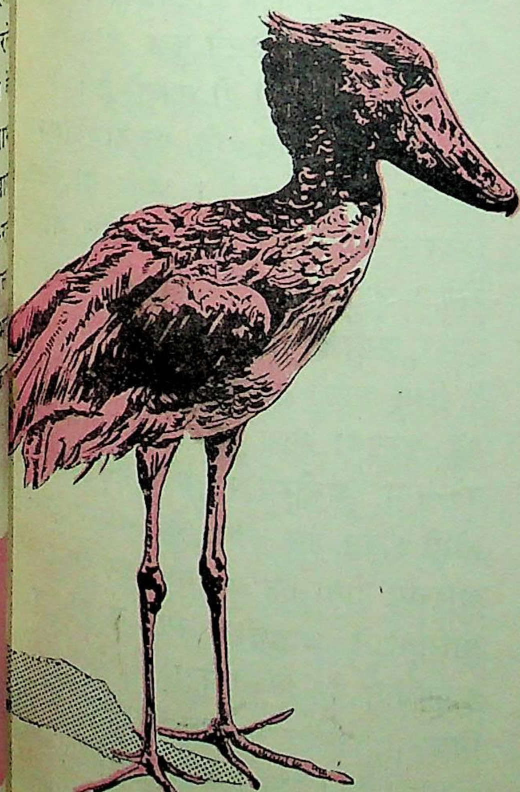

आदर्श आदान-प्रदान

यह प्रमाण सिद्ध है कि चीटियों और तितलियों में गूढ़ और प्रगाढ़ मैत्री है। फूलों से मधु चूसी हुई तितली का नन्हा लार्वा स्वयं भी मधुपूर्ण होता है। चींटी उसे

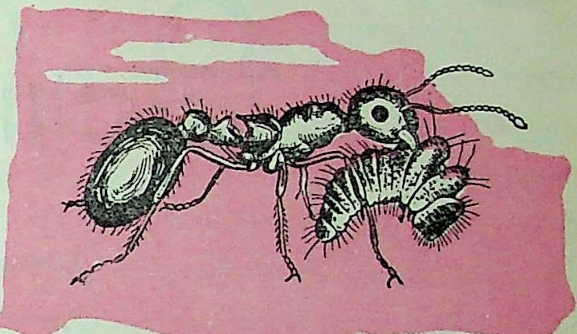

सावधानी पूर्वक अपने घर में ले आती है और उसके परिचित अंग को सहला-सहलाकर उसका मधु अपने परिवार के लिए जुटा लेती है। इतने से वह लार्वा मरता तो नहीं, बेदम अवश्य हो जाता है। तब उसे रुग्णालय में पहुँचा दिया जाता है, जहाँ वही चींटी जो उसे प्रारम्भ में लाई थी, उसकी सेवासुश्रूषा करती है। कुछ दिन बाद स्वस्थ होने पर वह लार्वा भी पूर्ण तितली बन जाती है और अपने आतिथेय के घर से विदा ले लेती है।

मछलियों का तैरता हुआ कारखाना

चार सौ मल्लाहों तथा विविध यन्त्र-सज्जायुक्त एक अति विशाल जहाज जर्मनी के कील बन्दरगाह पर तैयार हो रहा है। जब इसे तैराया जाएगा तब मालूम होगा मानो एक विशाल कारखाना ही तैर रहा है जिसमें मछली फँसी नहीं कि कटाई, छिलाई सफाई और पैकिंग तक के सारे कार्य वहीं के वहीं सम्पन्न हो जाएँगे। व्लाडीवोस्टक नामक यह विशाल जहाज रूस के आर्डर पर जर्मनी तैयार कर रहा है। इसमें कई हजार टन मछलियाँ प्रतिदिन तैयार की जा सकेंगी। इस जहाज में ही सिनेमा, लाण्ड्री, छोटा-सा मार्केट और हेलिकाप्टर के लिए भी आवश्यक स्थान-सुविधा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्यलोक के निवासियों से बातचीत

डा. शिवगोपाल मिश्र

पृथ्वी पर आरूढ़ होकर आज का मानव स्वयं को सिरताज मान बैठा है। वह यह मानने के लिए तैयार नहीं कि अन्य लोकों में भी सभ्य प्राणी हो सकते हैं। हमारी पृथ्वी आकाशगंगा कहलाने वाले उन लाखों नक्षत्रपुंजों में से केवल एक पुंज का अंग मात्र ही तो है! अतः क्या यह सम्भव नहीं कि इस पृथ्वी का मनुष्य एक न एक दिन उन अन्य लोकों के वासियों से भेंट करे?

मैरिनर द्वितीय द्वारा शुक्रग्रह के विवरण प्राप्त होने के पश्चात् तो यह आशा बल पकड़ने लगी है। अमरीकी नोबुल पुरस्कार विजेता मुलर तथा शेपले का मत भी इसी की पुष्टि करता है। तो आखिर हम उन अन्य लोकवासियों की वाणी क्यों नहीं सुन पाते? सम्भव है आज से बीस या बीस हजार वर्ष बाद वे वाणियाँ सुनने को मिलें। तब अन्तरिक्ष की वेधशालाओं में रखे हुए विविध यंत्रों द्वारा टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं के रूप में टेप पर संकेत होने लगेंगे। उन वेधशालाओं के निरीक्षक चकित हो[ंगे] देखेंगे कि दूसरे स्टेशन पर भी [वे] रेखाएँ खिंच रही हैं। घण्टे भर में संसार को पता चल जाएगा कि कि[सी] लोक के वासी ने हमसे कुछ बातें ... वह ध्वनि उसी की हो सकती है।

वे प्राणी कौन होंगे, यह अभी कि[सी की] कल्पना में भी नहीं है। अभी तो को[ई] विश्वास भी न करेगा कि वे बोल भी ... होंगे। जब उस प्रकार की अनेक रीलें ... होकर जमा होंगी तब हमारी आगा[मी] ... के लिए काफी सामग्री मिल जाएगी। ... यह कल्पना सत्य ठहरी तो मानव ... को नया, अनोखा ही मोड़ देने वाली होगी। तब उस काल के मानव ... आश्चर्य होगा कि अब तक उन अन्य ... वासियों से बातचीत क्यों न हो ... तत्पश्चात् इस पृथ्वी के तथा उस ... निवासी परस्पर सम्बन्ध स्थापित ... प्रयत्न करेंगे। उस स्थिति में प्रसिद्ध ... फ्रेडरिक गौस तथा नक्षत्रविद् फ्रेडरि...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वदृष्टा सिद्ध होंगे, क्योंकि उन्होंने अन्य लोकों में प्राणियों के होने की सर्वप्रथम कल्पना की थी। इसी प्रकार चार्ल्स क्रास प्रशंसा का पात्र बन जाएगा जिसने पृथ्वी का गणित-ज्ञान नक्षत्र लोक के वासियों को सिखाने का विचित्र सुझाव रखा था। उसका सुझाव था कि एक बहुत लम्बी चौड़ी चिता साइबेरिया अथवा सहारा जैसे असीम मरुविस्तार में तैयार की जाए ताकि निकट के प्रदेशों को अग्नि की लपटों से कोई हानि न पहुँचे। वह चिता पाइथोगोरस के प्रमेय के रूप में बनायी जाए। तभी उस लोक के वासी यह जानेंगे कि पृथ्वीनिवासी गणित में ही सोचते हैं। तभी रेडियो-सौरविज्ञान के प्रवर्तकों कार्ल जेंस्की, फिलिप मारिसन तथा फ्रेंक ड्रेक आदि के नाम पर सड़कों के नामकरण हो जाएँगे, क्योंकि इन्हीं ने तो १९६० में उन दो नक्षत्रों के साथ पृथ्वी का सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास किया था जो पृथ्वी से ग्यारह प्रकाशवर्ष की दूरी पर स्थित हैं !

१९६० के प्रारम्भ में पश्चिमी वर्जीनिया की ग्रीनबैंक स्थित वेधशाला में नक्षत्रों से रेडियो-सम्पर्क स्थापित करने के प्रयास किये गये थे। तब उन्हें बीच ही में यह कहकर स्थगित कर देना पड़ा था कि न तो कुछ सुनायी ही पड़ रहा है, न कुछ रिकार्ड किया जा सका है। जो संकेत प्रेषित किये गये हैं वे १९७१ तक तो लक्ष्य के नक्षत्र तक पहुँच पाएँगे और यदि उनका कुछ उत्तर मिला भी तो १९८२ से पूर्व यहाँ प्राप्त न हो सकेगा। इस निराशावादी दृष्टिकोण की आलोचना करते हुए सोवियत नक्षत्रविद् जोसेफ श्लोव्स्की ने कहा है कि इन परीक्षणों को यों स्थगित न कर देना चाहिए, क्योंकि जिन निकटतम नक्षत्रों पर वाणी-संकेत मिलने की आशा रखी जा सकती है, वे ११ नहीं सैकड़ों प्रकाशवर्ष की दूरी पर स्थित हैं। अतः हमें अपने रेडियो संकेत बराबर भेजते ही रहना चाहिए। न जाने कितनी शताब्दियों से वहाँ के निवासी हमसे सम्पर्क स्थापित करने को उत्सुक होंगे !

ऐसा एक लघु प्रयास ब्रिटेन में भी किया जाने वाला है, किन्तु उस योजना को अभी प्रकाशित नहीं किया गया है। डा. आर. सी. जेनीसान का मत है कि नक्षत्रवासियों के द्वारा प्रेषित संकेत हमें अभी तक इसलिए नहीं मिल पाये हैं कि हमारी पृथ्वी के वायुमण्डल की ऊपरी परतें वहाँ से आने वाली समस्त ध्वनि-लहरों को ऊपर ही ऊपर परावर्तित करती रहती हैं। अतः ब्रिटिश वैज्ञानिक ऐसे रिसीवरों और ट्रान्समीटरों को अपने कृत्रिम उपग्रहों पर स्थापित करना चाहते हैं जो विशिष्ट आवृत्तियों पर कार्य कर सकें। सम्भव है कि अमरीकी वैज्ञानिक मैमान द्वारा १९६० में सर्वप्रथम प्रयुक्त लेसर विधि के उपयोग से एक नवीन दिशा प्राप्त हो सके और कुछ नवीन लोकों की झाँकी मिल सके। अनेक प्रयोगशालाएँ इसी लेसर विधि पर कार्य कर रही हैं। अब तो १०० करोड़ वाट प्रति वर्ग सेंटीमीटर की तीव्रता का प्रकाश उत्पन्न करना सम्भव हो गया है। यह प्रकाश सूर्य के प्रकाश से दस लाख गुना अधिक तीव्र है !

इन उपकरणों के बल पर आशा है कि मानव उन अनेक बाधाओं पर विजय प्राप्त कर सकेगा जो अब तक उसे अन्य लोकवासियों से बात करने में रुकावट डालती थीं; लेकिन तब भी मानव क्या इस प्रयास में सचमुच सफल हो सकेगा ? इसी आशय का प्रश्न अमरीकी लेखक ब्रेडबरी ने भी रखा है कि यदि यहाँ का मानव प्रथम बार

[शेष पृष्ठ ४७ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डीजल इंजन का आविष्कर्ता

रुडोल्फ डीजल

केदारनाथ

'गुड नाइट दोस्तो, सुबह फिर मिलेंगे !' लेकिन उसके लिए वह सुबह आयी ही नहीं। २६ सितम्बर १६१३ की वह रात उसके लिए कालरात्रि बनकर रह गयी। जितनी बड़ी वस्तु उसने संसार को परिवहन और यातायात के क्षेत्र में दी, मृत्यु का उतना ही बड़ा रहस्य छिपाये हुए वह महान् व्यक्ति अदृश्य भी हो गया। खोज-खोजकर हारे हुए पुलिस गुप्तचर और समाचारपत्रों ने भी आखिर चुप्पी साध ली। काल की सतह पर दिनों और वर्षों के कितने ही पानी बह गये। संसार उसे एक प्रकार से भूल-सा चला। तभी उसकी महान् उपलब्धि ने करवट बदली और उसके आविष्कार की विलक्षण उपयोगिता ने उसके नाम पर जमी हुई विस्मृति की धूल उड़ा फेंकी। वह था, जर्मन वैज्ञानिक डीजल—आज के सर्वाधिक उपयोगी डीजल इंजन का आविष्कारक—रुडोल्फ डीजल।

डीजल का जन्म १८५८ की १८ मार्च को पेरिस नगर में हुआ था। उसके माता-पिता जर्मन थे। प्रारम्भिक शिक्षा पेरिस में ही चल रही थी कि १८७० में फ्रांस और जर्मनी के बीच युद्ध छिड़ गया। १२ वर्ष के रुडोल्फ को लेकर उसके माता-पि इंगलैण्ड में शरण ली। वहाँ घर से दूर पैदल ही स्कूल जाना पड़ता रुडोल्फ बचपन से ही मेधावी था। की आयु में वह म्यूनिक टेक्निकल का स्नातक इंजीनियर बन अध्ययनकाल में वह प्रो. वान लि सम्पर्क में आया। वान लिन्दे उस स प्रसिद्ध वैज्ञानिक थे जिन्हें वायु को द्रवित करने का श्रेय प्राप्त था। एक दिन कक्षा में सहज ही एक छात्रों को नोट करायी। उस पर ध्यान दिया, न दिया; किन्तु रुडो लिए तो कापी के हाशिये पर लि व्याख्या एक विकट प्रश्न चिह्न बन वह व्याख्या थी—'स्टीम इंजन अपने की कुल मात्रा का केवल १२% ऊर्जा में परिणत कर पाता है।' कि शेष ८८% ताप का व्यर्थ जाता बड़ा अपव्यय था।

इस प्रश्न चिह्न ने रुडोल्फ को नहीं बैठने दिया। १२ वर्ष का इसी में बीत गया कि इसका हल किया जा सके। इस बीच वह पेरिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेफ्रिजरेटर निर्माता के यहाँ कार्य करता रहा और अपने प्रश्न का हल खोजने में भी लगा रहा। १८९३ में उसने डीजल इंजन का प्रथम् माडल तैयार किया और अपने अध्ययन का संक्षिप्त सार Theory and Construction of a Rational Heat Motor के नाम से एक पत्र के रूप में प्रकाशित कराया। उसी पत्र ने डीज़ल इंजन के सिद्धान्तों का सूत्रपात किया और डीजल को प्रसिद्धि दिला दी।

संयोगवश उसका प्रथम प्रदर्शन पूर्णतः सफल न हो सका। चालू होते ही इंजन तप्त वायु का विस्फोट सहन न कर सका और टूट-फूट गया, किन्तु रुडोल्फ निराश नहीं हुआ। उसने दर्शक-वैज्ञानिकों का इस तथ्य द्वारा समाधान कर दिया कि भले ही इंजन वह धक्का न सह सका परन्तु सिद्धान्त तो अपनी जगह अकाट्य ही था। उस सिद्धान्त के अनुसार कम्प्रेशन इग्नीशन इंजन को कार्य करना ही चाहिए। रुडोल्फ के समाधान से क्रप (Krupp) तथा आग्सबर्ग (Augsburg) नामक दो प्रसिद्ध इंजन-निर्माता आश्वस्त हो गये और उन्होंने भरपूर सहयोग दिया। सम्मिलित प्रयत्नों के फलस्वरूप चार वर्ष पश्चात् १८९७ में २६ हार्स पावर के डीजल इंजन का सफल प्रदर्शन हुआ।

डीजल इंजन में ऐसी क्या विशेषता थी जिसने रुडोल्फ को वह प्रसिद्धि दिलायी? इसकी मूल कल्पना में उसके पुरोगामी एक ब्रिटिश वैज्ञानिक हर्बर्ट एक्राइड स्टुअर्ट का भी भाग है। दोनों का लक्ष्य एक ही रहा कि इंजनों के लिए रिफाइंड पेट्रोल बहुत मँहगा पड़ता है। अतः उसके स्थान पर ऐसा इंजन बनाया जाए जिसमें घटिया, भारी और सस्ता तेल उपयोग में लाया जा सके। उस आविष्कृत डीजल इंजन में वह [illegible] इसमें एक विशेषता यह भी थी कि पेट्रोल इंजन में लगने वाली इग्नीशन-व्यवस्था (ignition device) उसमें आवश्यक न थी। कम्प्रेस्ड वायु का ही ताप इतना बढ़ाया जा सकता था कि कम्प्रेशन स्ट्रोक लगते ही ऊर्जा उत्पन्न हो जाए। दूसरी विशेषता यह थी कि पेट्रोल इंजन में तो तेल को ज्वलनशील गैस में परिणत करने तथा वायु से मिश्रित करने के लिए कारब्यूरेटर आवश्यक है जबकि डीजल इंजन में वह भी आवश्यक नहीं। इसमें तो भारी, मोटा, हलका, सस्ता तेल काम आ जाता है। होता केवल यह है कि सिलिण्डर में पिस्टन सादा हवा खींचकर उसे ३५ वायुचाप तक दबाता है। फलतः उस संकुचित वायु का ताप ५००° C तक पहुँच जाता है। इससे पूर्व कि पिस्टन चरम बिन्दु पर पहुँचे, उस तप्त वायु में तेल की एक निश्चित फुहार आ मिलती है, तभी विस्फोट के साथ उत्पन्न ऊर्जा पिस्टन को नीचे धकेल देती है।

इस प्रकार रुडोल्फ के उस संक्षिप्त नोट ने जिस विराट् प्रश्न चिह्न का रूप धारण कर लिया था वह प्रश्न बारह वर्ष के अथक परिश्रम के पश्चात् एक ऐसा जबर्दस्त समाधान बन गया जिसने विज्ञान-जगत में क्रान्ति मचा दी। जहाँ स्टीम इंजन ईंधन से उत्पन्न ताप का केवल १२% और पेट्रोल इंजन २८% भाग ऊर्जा में बदल सकते हैं, वहाँ डीजल इंजन ३५% तक बदल सकता है। इसी विशेषता के कारण डीजल इंजन को आज सबसे प्रमुख स्थान प्राप्त है। बड़ी बसें, बड़े रेलवे इंजन, भारी ट्रैक्टर, विशाल स्टीमर तथा वायुयान आदि के लिए डीजल इंजन वरदान है।

अपने प्रयोगों की सफलता से प्रोत्साहित होकर रुडोल्फ डीजल ने एक विशाल कम्पनी खोल दी जिसका केन्द्रीय कार्यालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

म्यूनिक में रखकर देश-विदेशों में शाखाओं का जाल बिछा दिया। रुडोल्फ का भाग्य सदैव उसके साथ रहा। धन और प्रसिद्धि उसके दायें-बायें रहीं। जहाँ भी वह गया, लोगों ने उसका खुलकर स्वागत, सम्मान किया। अत्यन्त प्रवृत्तिमय जीवन ने रुडोल्फ को व्यस्त ही व्यस्त रखा। अफसोस केवल यही रहा कि ४२ वर्ष की ही अल्पायु में उसका अन्त एक ऐसी पहेली बन गयी जो सुलझाये न सुलझी और केवल अनुमानों का ही सहारा लेना पड़ा। १९१३ के सितम्बर में घेण्ट नगर में आयोजित विश्व-प्रदर्शनी के संचालकों ने रुडोल्फ को विशेषतः आमन्त्रित किया। वहाँ रुडोल्फ का सार्वजनिक सम्मान किया गया। १ अक्टूबर को इंगलैण्ड में होने वाली डीजल-इंजन निर्माताओं की बैठक में सम्मिलित होने के लिए रुडोल्फ ने २९ सितम्बर को जहाज द्वारा एण्टवर्प से प्रस्थान किया। दिन भर की समुद्री यात्रा की थकान रात को अपने सुसज्जित केबिन में मित्रों के साथ उतार रहा था। वातावरण स्वस्थ और उल्लासपूर्ण था। यात्रा में एक ही दिन शेष था। उसी रात को……

'गुड नाइट दोस्तो, सुबह फिर मिलेंगे'—कहकर रुडोल्फ ने मित्रों को विदा दी। सुबह हुई और नाश्ते पर मित्रों का जमघट लग गया। रुडोल्फ की ही प्रतीक्षा थी। देर होती चली गयी और काफी देर के बाद भी जब रुडोल्फ का केबिन न खुला तो मित्रों ने चिन्ता-मिश्रित उत्सुकतावश रोशनदान में से झाँका। देखा तो रुडोल्फ केबिन में था ही नहीं! केबिन का दरवाजा तोड़कर अन्दर खोजा-देखा तो पाया कि बिस्तरे पर एक भी शिकन नहीं पड़ी थी और सोने की पोशाक भी तहबन्द रखी थी। घड़ी, चेन, सूटकेस, सब कुछ अधखुला ज्यों का त्यों पड़ा था, केवल रुडोल्फ वहाँ नहीं था। जहाज का कोना-कोना छान डाला गया लेकिन कुछ भी पता न चला।

जिसने भी सुना स्तब्ध रह गया। वह हत्या थी या आत्महत्या, कुछ भी समझ में न आया। आत्महत्या का तो प्रश्न ही … जबकि ४२ वर्ष का युवा रुडोल्फ, … जीवन के चरम पर था। हत्या की बात न जमी, क्योंकि रुडोल्फ कभी अपने … बड़ी रकम लेकर नहीं चलता था। दुर्घ… की भी संभावना नहीं आँकी जा रही … क्योंकि आधुनिक सज्जायुक्त स्टीमर … केबिन में उसकी कोई गुंजाइश ही नहीं … आखिर हुआ क्या?

यह समस्या तब और भी जटिल … गयी जब म्यूनिक-स्थित रुडोल्फ के … परिवार को लन्दन से यह तार मिला … 'अफवाहें गलत, रुडोल्फ लन्दन में …' लेकिन अफसोस, वह अफवाह गलत … तार ही गलत था। कुछ दिन बाद … के फ्लशिंग बन्दरगाह के किनारे … द्वारा पटका हुआ डीजल का शव … हुआ। शव की पहचान के लिए … उसकी जेब की वस्तुएँ उसके पुत्र को … दी गयीं। वस्तुएँ पहचान ली ग… वे रुडोल्फ डीजल की ही थीं। अधिकारि… ने जाँच-पड़ताल की अधिक छीछा… में न पड़कर शव को सागर-समाधि दे दी।

इस दुखद आश्चर्य में एक लहर … भी आ मिली। डीजल के कागजात … पर उसके दिवालिया होने का रहस्य … गया। अपने उद्योग-व्यापार के लिए … लाखों का ऐसा कर्ज ले रखा था जो उस… ज्ञात था। संभव है वही आर्थिक विभी… उसे मृत्यु के अंध कूप की ओर धकेल … हो और वह इस रहस्य को सीने में … ही चल दिया हो जो सहज ही … सके!

कुछ भी हो, डीजल इंजन आज … वहन उद्योग की रीढ़ है और इसका … रुडोल्फ डीजल को है जिसके मरने … कहीं समाधि बनी, न मृत्यु रागिनी … बस, मृत्यु से भी अधिक दुसह नीरवता … शून्यता को लेकर वह नर-वीर अनन्त … में समा गया!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्चर्यजनक करबद्ध कीट मेन्टिस

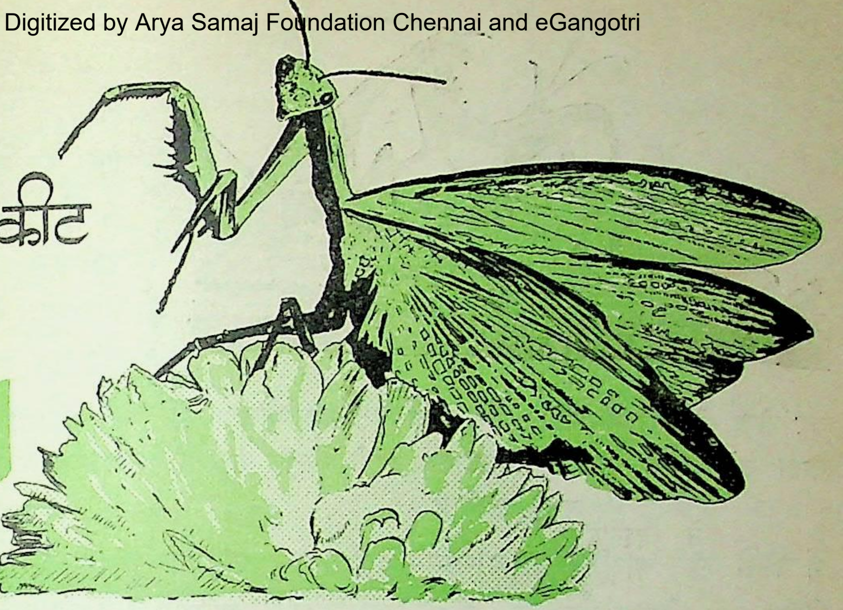

डा. त्रिलोक मजूपुरिया

मेन्टिस कीड़े के विषय में विचित्र परम्परागत धारणाएँ तथा भ्रम प्रचलित थे। बहुत समय पहले सर्वप्रथम यूनान के कृषकों ने इसे सूखी हुई घास पर मानो प्रार्थनारत मुद्रा में हाथ जोड़े हुए देखा था। रंग-बिरंगे पारदर्शी वस्त्रों जैसे पंखोंयुक्त इस प्रकार हाथ जोड़े देखकर उन्होंने इसे प्रार्थनारत कोई देवदूत ही समझा और तभी से इसका नाम बद्धहस्त कीट अर्थात् प्रार्थनारत मेन्टिस (praying mantis) पड़ गया।

वास्तव में यह बड़ा खूँख्वार और बगुले जैसा धूर्त कीट है। बगुला कैसी कुटिलता से मछलियों की ताक में किन्तु ध्यानमग्न सा एक ही टाँग पर खड़ा रहता है और मछली ताक में आते ही भगतपना भुलाकर अपना शिकार झपट लेता है! ठीक वैसे ही यह मेन्टिस भी प्रार्थना का ढोंग रचकर दोनों हाथ जोड़े हुए अपने शिकार की टोह में ध्यानमग्न बैठा रहता है। शिकार पहुँच में आते ही प्रार्थना वाले हाथ उसे दबोचने वाला शिकंजा बन जाते हैं। अतः इसका स्वभाव देखते हुए इसका नाम उच्चारण के हिसाब से तो 'प्रेयिंग' ठीक है, किन्तु प्रार्थनारत (praying) न कहकर शिकार-रत (preying) ही कहना अधिक उपयुक्त रहेगा।

टिड्डी वर्ग का यह कीड़ा सुन्दरता में भी किसी से कम नहीं। इसका फुर्तीला, छरहरा शरीर रंग-बिरंगे, पारदर्शी पंखों से सुसज्जित रहता है। यह कीट-जगत के उन दुर्लभ कीटों में से है जो अपनी गर्दन पीछे की ओर भी घुमा सकते हैं। आरी जैसे इसके पाँव, इसके घातक अस्त्र हैं। दोनों पार्श्व की इसकी आँखें मानो अनेकों लैंस के समूह हैं। सिर के बीचोबीच दोनों शृंगतन्तुओं (antinnae) के मध्य तीन सादा नेत्र होते हैं। नन्हीं टिड्डियाँ, मक्खी, मच्छर, ततैया आदि इसके प्रिय आहार हैं।

मकड़ी, मछली तथा कुछेक रेप्टाइल्स जैसे जन्तुओं की भाँति इस वर्ग में भी मादा ही अधिक विशालकाय तथा शक्तिशाली होती है। इसमें भी नर ही पूर्णतः मादा के वश में रहता है और मादा के निकट इस प्रकार आतंकित होकर जाता है जैसे बधिक के समक्ष कोई अपराधी। इनकी विभिन्न जातियों के अन्तर्गत पूर्वी एशिया के प्रदेशों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

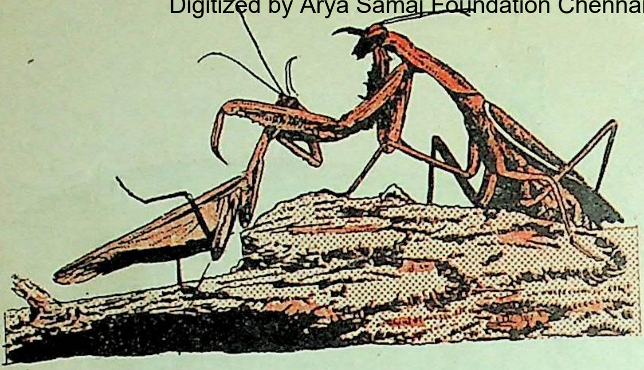

नर थोड़ा और साहस करके ज्योंही मादा के निकट पहुँचता है, मादा उसे कम से कम दस मिनट तक अपने मजबूत पंजों में जकड़े रहती है

में पायी जाने वाली मादा मेन्टिस की जीवन-क्रिया बड़ी रोचक होती है । इनके नर-मादा का सहवास-प्रसंग बड़ा मनोरंजक होता है । किसी डाल पर बैठी हुई मादा से मिलने के लिए ज्योंही नर मेन्टिस कुछ दूरी पर किन्तु उसी डाल पर टिकता है, मादा गर्दन घुमा कर एक नजर देखती है । मादा की स्वीकृति मिलने पर ही नर सहमता हुआ उसके निकट रेंगता-रेंगता पहुँचता है । निकट पहुँचने पर अपना सिर बिलकुल नीचे झुकाकर सतह से छुआ देता है मानो सचमुच ही प्रेयिंग (praying) अर्थात् वन्दना कर रहा हो । पर्याप्त बल और साहस एकत्र करके वह और निकट सरकता है । तभी मादा उसे कसकर पकड़ लेती है और लगभग दस मिनट तक नर मानो किसी संडासी में जकड़ा रहता है । तब एक बार मादा उसे ढीला छोड़ देती है । उतनी देर में नर अपना और भी निर्णय कर लेता है । यदि वह भाग जाना चाहता है तो पलक मारते ही फुर्र से उड़ जाता है अन्यथा मादा को आत्म-समर्पण कर देता है । समागम के पश्चात् हारी-थकी मादा उस नन्हें नर को चट करके अपनी भूख और थकान मिटाती है !

एक ही मादा के लि[...] कभी दो नर मेन्टिस आपस में [...] जाते हैं तब उनका वह खूंख्वा[...] एक की मृत्यु और दूसरे की [...] में ही समाप्त होता है । भ[...] अवस्था में मेन्टिस ऊपर के [...] को फुला लेता है और नीचे के [...] को पेट पर तेजी से फड़फड़ा[...] जिसके फलस्वरूप तीव्र घरघ[...] का स्वर उत्पन्न होता है ।

मादा मेन्टिस गर्भाधा[...] पश्चात् पहले ही बनाये हुए सुन्दर, [...] घोंसले में अण्डे देती है । ऋतु-काल में [...] से स्रवित चिपचिपे द्रव द्वारा घों[...] मजबूती से बनाया जाता है । अण्डे [...] समय मादा इस बात का ध्यान [...] है कि उन सबका मुँह घोंसले के नि[...] द्वार की ओर ही रहे जिससे बच्चे[...] बाहर निकलने में सुविधा रहे । अपने [...] बच्चों को देख पाना मादा मेन्टिस के [...]

भयभीत होने पर मेन्टिस ऊपर के पर उठाकर नी[...] परों को पेट से घिसकर घरघराहट उत्पन्न करता[...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

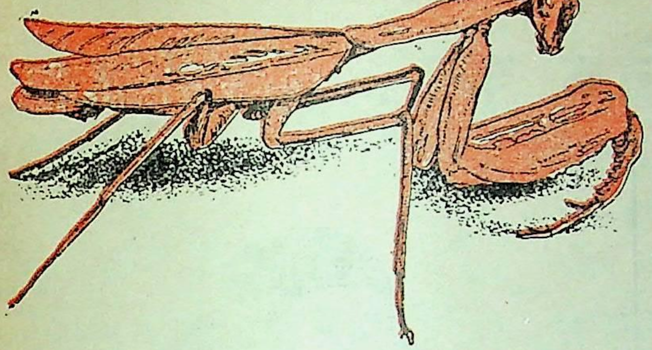

प्रार्थना की मुद्रा में (praying) किन्तु शिकार की ताक में (preying) : बगुला भगत मेन्टिस

में नहीं होता । अण्डे देने के एक या दो सप्ताह तक ही मादा जीवित रह पाती है ।

बिना माता-पिता के वे अण्डे सुरक्षित रूप से अन्दर ही अन्दर तैयार होते रहें इस हेतु मादा बड़े मनोयोग से सुदृढ़ घोंसला बनाती है । अतः संघर्ष-प्रवृत्ति तो उन बच्चों को मानो गर्भ में ही मिल जाती है । बाहर आने पर छिपकली, चिड़िया, चील जैसे इनके शत्रु इनकी प्रतीक्षा में ही रहते हैं । घोंसले से निकलते समय ये असंख्य शिशु मेन्टिस रेशमी धागे में लिपटे निकलते हैं किन्तु शीघ्र ही उनसे मुक्ति भी पा जाते हैं ।

प्रायः लोग इन्हें पालते हैं । ये सहज ही पल भी जाते हैं । पाल लेने के पश्चात् इनके कँटीले पाँवों और नुकीले डंक आदि का भय नहीं रहता । मेन्टिस का बहुरुपियापन भी बड़ा वैज्ञानिक तथा सार्थक है । अधिकतर यह पत्तियों से मिलते-जुलते रंग धारण करके अपने शत्रुओं से बच जाता है । जिस पूर्व एशियाई मेन्टिस का यहाँ उल्लेख किया गया है, वह अपने बहुरुपियापन में प्रसिद्ध है । इसका शरीर हूबहू दो जुड़ी हुई पत्तियों सरीखा दिखता है। शरीर की नसें भी पत्तियों की शिराओं जैसी दिखती हैं । हवा के साथ यह भी ठीक पत्तियों की तरह अपना शरीर हिलाता रहता है । इसके शत्रु इसे पहचान नहीं पाते और अति निकट से गुजर जाते हैं।

ऐसा कुशल बहुरुपिया, बगुला भगत और शिकारी मेन्टिस, टिड्डी-परिवार ही नहीं, कीट-जगत में भी अनोखा ही है । ●

अन्य लोक के निवासियों से बातचीत

[पृष्ठ ४१ का शेष]

वहाँ के निवासी से साक्षात्कार करे तो दोनों की प्रतिक्रिया क्या होगी ? मान लें, वे प्राणी मकड़ों के रूप में हों तो क्या मनुष्य उन्हें देखते ही मारने को प्रेरित होगा अथवा उन्हें समझने का प्रयास करेगा ? ए. सी. क्लार्क नामक एक अंग्रेज आलोचक का कहना है कि हमारी बर्बरता के कारण ही वहाँ के निवासी आज तक हमें दृष्टि-गोचर नहीं हुए । सोवियत गणितज्ञ एम. एग्रेस्ट ने एक रोचक प्रश्न यह भी उठाया है कि प्रागैतिहासिक काल में पृथ्वी के निवासियों की भेंट नक्षत्रवासियों से नहीं हुई होगी क्या ? उन्होंने अपने अनुमान के समर्थन में सहारा रेगिस्तान की गुफाओं में सन् १९५६ में प्राप्त कलाकृतियों और चित्रावलियों का उल्लेख किया है जिनमें आकाश में उड़ते हुए चित्र-विचित्र प्राणी उड़ते और अन्तर्ध्यान होते दिखाये गये हैं ।

इस प्रकार के विवरण मानवता के लिए महत्त्वपूर्ण सिद्ध होंगे । विज्ञान इस दिशा में हमें मानो दिखा रहा है कि मानव का इतिहास एक सर्वथा नए अध्याय के प्रथम चरण पर है । ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक वैज्ञानिक बात . . .

मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि हमें अपने बच्चों की दूसरों के बच्चों से तुलना नहीं करनी चाहिए। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार इससे बच्चों के स्वाभाविक विकास में बाधा पहुंचती है। यही बात मेट्रिक बाटों के सम्बन्ध में है। नन्हे मुन्नों (और मेट्रिक बाटों) के गुणों को परखिये और उन्हें ज्यों का त्यों अपनाइये।

मेट्रिक तोल का जोड़-तोड़ करके सेर न बनाइये।

इसमें आपका समय व्यर्थ ही नष्ट होगा और लेन-देन में अक्सर नुकसान रहेगा।

सही और सुविधाजनक लेन-देन के लिए

पूर्ण अंकों में

मेट्रिक इकाइयों का प्रयोग कीजिए

डी.ए. ६२/५४७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ

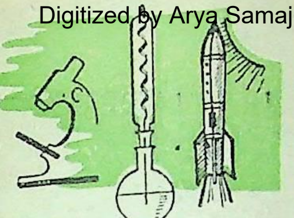

सफलता छप्पर से टपकी

उजबेक के नियाज कैलगीनवायेव ऐसे ही वैज्ञानिक हैं जिन्हें सफलता छप्पर फाड़ कर नहीं तो छप्पर पर पड़ी अवश्य मिली। दोगबेन नामक सदाबहार के पौधों का एक गट्ठर उन्होंने मध्य एशिया से मँगाया। हृदय रोग के लिए उपयोगी ओषधि स्ट्रोफेथिन की उन्हें तलाश थी। अब तक यह ओषधि अफ्रीका के उष्ण कटिबन्धीय जंगलों में स्ट्रोफेण्ट नामक वनस्पति से बनायी जाती थी। उसी से इसका यह नाम भी पड़ा था। नियाज ने इस नयी किस्म के कम से कम १००० पौधों पर अपने प्रयोग किये। सफलता न मिली तो झुँझलाकर गट्ठर को छप्पर के ऊपर फिंकवा दिया और इस प्रकार उन पौधों से छप्पर छवाने का ही काम लिया। कुछ दिनों बाद पुनः प्रयोग करने की इच्छा से २-४ डालें उठायीं तो वे यह देखकर चकित रह गये कि इस बार उन्हें स्ट्रोफेथिन आसानी से मिल गया। इसका कारण यह समझ में आया कि उन पत्तियों को आग आदि अन्य साधनों से सुखाने पर यह तत्त्व नष्ट हो जाता था जबकि खुली धूप में ज्यों का त्यों बना रहता था और उभर भी आता था।

इंजन ड्राइवरों की नौकरी खतरे में!

सोवियत इंजीनियरों ने एक यांत्रिक ड्राइवर बनाने का सफल प्रयोग किया है। इस प्रयोग के अनुसार अब इंजन ड्राइवरों की जरूरत न रहेगी, क्योंकि यांत्रिक ड्राइवर कहीं अधिक योग्यता और दक्षतापूर्वक काम करेगा। भरी हुई ट्रेन को वह चाहे जहाँ रोक सकेगा। उसके द्वारा यातायात के समय पालन में टाइम टेबुल से केवल ४-५ सेकण्ड का ही अन्तर रहेगा जो अति शुद्ध माना जाएगा। मानव-चालित ट्रेनें तो, आप जानते ही हैं, समय का कोई महत्त्व नहीं समझतीं। यान्त्रिक ड्राइवर इन अनियमितताओं से पूरी तरह बहरा-गूँगा रहेगा और समय-पालन में किंचित् भी रिआयत नहीं करेगा। मास्को में बिजली की एक ट्रेन पर ऐसे यान्त्रिक ड्राइवर का सफल प्रदर्शन भी किया जा चुका है।

बहु उद्देशीय स्टेथोस्कोप

न्यूयार्क की बेल एरोसिस्टम्स कम्पनी ने एक नया विद्युदाणविक स्टेथोस्कोप दो वर्ष के अथक परिश्रम के पश्चात् तैयार किया है। इसके द्वारा तीन मुख्य कार्य अलग-अलग अथवा एक ही साथ हो सकेंगे। हृदय की धड़कन को सामान्य ईयरफोन अथवा लाउडस्पीकर की सहायता से स्पष्ट सुना जा सकेगा, उस धड़कन को आसिलोस्कोप द्वारा पर्दे पर देखा जा सकेगा और इलेक्ट्रोकार्डियोग्राफ द्वारा स्थायी रूप से अंकित भी किया जा सकेगा। इसमें यह भी विशेषता रहेगी कि जिस खास अंग की ध्वनि को सुनना चाहेंगे उसे अन्य ध्वनियों से पृथक् करके सूक्ष्मतापूर्वक सुन सकेंगे। वजन में लगभग ७०० ग्राम का यह स्टेथोस्कोप, इसमें लगी मर्करी बैटरियों के कारण काफी समय तक काम दे सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj

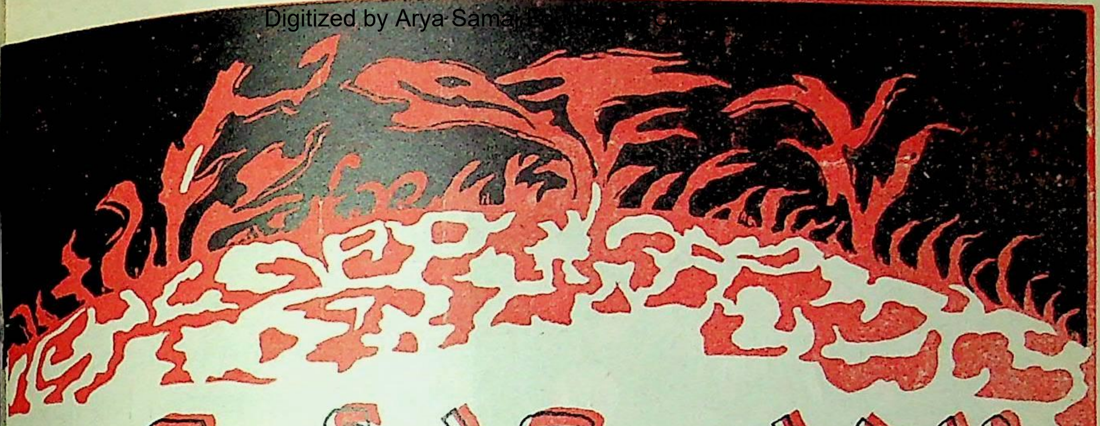

यदि सूर्य को निकट से देखें

कुलदीप चड्ढा

संस्कृत में कहावत प्रसिद्ध है, 'दूरात् हि पर्वता रम्याः' अर्थात् पहाड़ दूर से ही सुन्दर दिखाई देते हैं। और, केवल पहाड़ ही क्यों, अनेक छोटे-बड़े पदार्थों का भी यही हाल है। हमारे चिर-परिचित सूर्य को ही लीजिए। दूर से कितना सुन्दर और तेजस्वी दिखाई देता है, मानो सोने का थाल ! और यदि आप नजदीक से देखें तो····?

लेकिन ठहरिए, सूर्य के निकट जाकर उसे देखने का साहस कहाँ से आएगा ? वह तो लाखों मील दूर से ही सब कुछ झुलसा कर रख देगा ! निकट जाने की जरूरत भी तो नहीं। जिन लोगों ने सूर्य को निकट से देखा है, उन्होंने इसके रूप-रंग की काफी चर्चा की है। आइए, उन्हीं की दृष्टि से सूर्य को देख लें। सूर्य को निकट से देखने वालों ने दूरदर्शी की सहायता ली है। संयोग की बात है कि दूरदर्शी का आविष्कार सन् १६०८ में हुआ, तभी से सूर्य के बिम्ब में विकार दिखाई देने लगे। ज्यों-ज्यों दूरदर्शियों की क्षमता और अवलोकनकर्ताओं का ज्ञान बढ़ता गया, सूर्य-बिम्ब की जानकारी भी बढ़ती गयी।

कणिकाओं से बना बिम्ब

सूर्य का बिम्ब परस्पर सटी हुई कणिकाओं (granules) से बना है। ऐसे ही समझिए जैसे पुरानी सड़कों-गलियों के फर्श पत्थर के रोड़ों को सटाकर बनाये जाते हैं। सूर्य की इन कणिकाओं का व्यास लगभग ६०० से १४०० कि.मी. तक का है। इनका आकार लगभग गोल या समकोण भी होता है। इनमें से किसी एक पर ध्यान केन्द्रित करें तो कभी वह बहुत चमकदार दिखाई देगी, और कभी चमक कम दिखने लगेगी और निकट की दूसरी कणिका चमक उठेगी। अतः परस्पर सटी हुई इन कणिकाओं के द्वारा निरन्तर झिलमिलाहट होती रहती है।

सूर्य कलंक

जब कोई कणिका बिलकुल लुप्त हो जाती है तो उसका स्थान छोटा-सा काला धब्बा ले लेता है। उस धब्बे के कारण निकटवर्ती क्षेत्र भी काला होने लगता है और बढ़ते-बढ़ते हजारों मील के व्यास का हो जाता है। उसका आकार अनियमित और परिवर्तनशील होता है। सूर्य के उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

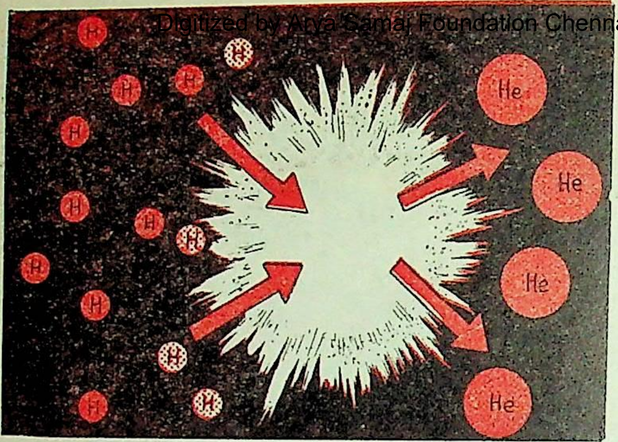

हाइड्रोजन के परमाणु परस्पर टकराकर हीलियम में परिवर्तित होते हुए तीव्र ताप और प्रकाश उत्पन्न करते हैं

काले धब्बों को सूर्य-कलंक (sun-spots) कहते हैं। दूरदर्शी की सहायता से सत्रहवीं शताब्दी में जब ये सर्वप्रथम दिखलाई देने लगे तब एकाएक तो लोगों को विश्वास न हुआ। अतः इनकी घोषणा करने वाले नक्षत्र-विदों—गैलीलियो और पादरी क्रिस्ताफ शाइनर—की लोगों ने काफी खिल्ली उड़ाई। शीघ्र ही शक्तिशाली दूरदर्शी के आगे वह अविश्वास ठहर न सका। विश्वास स्थापित होते ही सूर्य के इस विचित्र लक्षण के बारे में लोगों की रुचि बढ़ने लगी। न केवल वैज्ञानिकों में, बल्कि सर्वसाधारण में भी दूरदर्शी द्वारा सूर्य का अवलोकन एक फैशन बन गया। अतः सूर्य कलंकों की जानकारी जल्दी ही स्पष्ट होती गयी। पहले कुछ लोगों का मत था कि ये कलंक सूर्य से अलग ही कोई पदार्थ हैं—सूर्य के गैसीय मण्डल के कोई काले बादल, अथवा पृथ्वी और सूर्य के बीच मँडराने वाले वृहत्काय उकाब पक्षी। पादरी शाइनर ने सिद्ध किया कि वे सूर्यमंडल के ही भाग हैं और उसके परिभ्रमण में भाग लेते हैं। प्रायः सूर्य के घूमने के कारण कोई कलंक सूर्य के परोक्ष भाग में पहुँच जाता है। किन्तु १३½ दिन के बाद वह फिर सूर्य के दूसरे सिरे पर प्रकट हो जाता है। इसी बीच वह कलंक सूर्य की मध्य रेखा की ओर सरक[ता] है। कई बार एक बड़ा कलंक छोटे भागों में बँट जाता है। छोटे कलंक मिलकर एक बड़े कलंक [का] सृजन भी करते हैं।

ग्यारह वर्षीय चक्र

सूर्य कलंक सूर्य-बिम्ब के स्थि[र] परिवर्तनशील लक्षण हैं। फिर भी [इनका] प्रकट और विलीन होना एक नि[श्चित] क्रम में बँधा है। इस क्रम के प्रारम्भ [में] सूर्य की मध्य रेखा के उत्तर [और] दक्षिण में ४०° के लगभग छोटे-छोटे [कलंक] उत्पन्न होते हैं। समय के साथ [इनकी] संख्या और विस्तार बढ़ते जाते [हैं।] आरम्भ से चार-पाँच वर्ष पश्चात् [इनकी] व्यापकता अधिकतम होती है। [इस] अवस्था में नंगी आँखों ही काले [या] काजल लगे शीशे द्वारा इन्हें देखा [जा] सकता है। निकट अतीत में ऐसी स्थि[ति] १९५९-६० में हुई थी। इसे सूर्य[कलंकों की] अधिकतम सक्रियता कहते हैं। इसके [बाद] कलंकों की संख्या और व्यापकता [घटने] लगती है। साथ ही सूर्य-केन्द्र की [ओर] इनका सरकना भी जारी रहता है। [लगभग] ५° उत्तर और दक्षिण के लगभग पहुँ[चकर] यह क्रम समाप्त होता है। इसमें ११ [वर्ष] लगते हैं। अतः इसे ग्यारह वर्षीय चक्र [कहा] जाता है। यह ११ वर्ष की अवधि [भी] सर्वथा निश्चित नहीं। ९ और १२ वर्ष[ों के] मध्य भी यह परिवर्तन-क्रम चलता [पाया] गया है। औसत ११ वर्षों का ही रहता [है।]

वुल्फ संख्या

सूर्य कलंकों के ग्यारह वर्षीय चक्र [की] खोज १८४३ के लगभग वुल्फ नामक [वैज्ञा]निक ने की थी। इनके बारे में प्राथ[मिक] सिद्धान्त बनाने का अधिकांश श्रेय वुल्फ [को]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

…है। अपने शिष्य वुल्फ की सहायता से इसने सौर-सक्रियता का अनुमान लगाने का सूत्र भी निर्धारित किया। वास्तव में केवल सूर्य कलंकों की संख्या का उल्लेख इस सक्रियता का अनुमान नहीं दे सकता क्योंकि भिन्न-भिन्न कलंकों के क्षेत्रफल में बहुत अन्तर होता है। अतः इन दोनों वैज्ञानिकों ने वुल्फ संख्या की परम्परा चलाई। इसे निर्धारित करने के लिए बड़े कलंकों को दस से गुणा करके छोटे कलंकों की संख्या में जमा कर दिया जाता है। कई वैज्ञानिकों के मतानुसार सौर-सक्रियता का यह तरीका सही नहीं। फिर भी इसी के अनुसार गत बीसियों वर्षों की सक्रियता के आँकड़े उपलब्ध हैं। अतः आज भी यही विधि प्रचलन में है।

यद्यपि वुल्फ संख्या का प्रतिपादन १८४९ के लगभग हुआ, उससे सैकड़ों वर्ष पहले की कलंक संख्या के अनुमान उपलब्ध हैं। पुराने पेड़ों के तनों का निरीक्षण भी इस विधि में सम्मिलित है। इसे इस प्रकार समझेंगे : सवा नौ करोड़ मील की दूरी के बावजूद, सूर्य के कलंकों का पृथ्वी पर अनेक विधि से प्रभाव पड़ता है। यह तो स्पष्ट ही है कि एक साल में पेड़ के तने में वृद्धि होती है। यदि पुराने पेड़ के तने को काट कर उसका निरीक्षण किया जाए तो प्रति वर्ष की वृद्धि अलग-अलग वलयों के रूप में दिखती है। इन्हीं वलयों की मोटाई नापकर डा. डगलस नामक अमरीकी वैज्ञानिक ने सूर्य कलंकों की सहस्रों वर्ष पुरानी संख्याओं का अनुमान लगाया है।

एक ग्यारह वर्षीय चक्र में अनेक कलंक बनते-बिगड़ते हैं। एक-एक सूर्य कलंक की आयु इस अवधि की तुलना में बहुत कम होती है। कुछ कलंक तो केवल घण्टों के ही मेहमान होते हैं, जबकि कुछ सप्ताहों तक रहते हैं। सबसे अधिक दीर्घजीवी कलंक १८४० में प्रकट हुआ था जो १८ मास तक दिखाई दिया।

कलंकों के चुम्बकीय क्षेत्र

अमरीकी नक्षत्रविद् हेल के अध्ययन द्वारा सूर्य कलंकों में चुम्बकीय क्षेत्रों के लक्षण भी मिले हैं। अनेक बार उन क्षेत्रों का चुम्बकत्व, पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र से १०-१५ हजार गुना अधिक पाया गया है। इस दृष्टि से कलंकों के अनेक भेद और लक्षणों का निर्धारण किया गया है। प्रायः कलंकों की अनुपस्थिति में भी क्षीण चुम्बकत्व प्रदर्शित होता रहता है। तत्पश्चात् वहाँ भी एक कलंक प्रकट हो जाता है। ऐसे स्थलों को अदृश्य कलंक कहते हैं।

तप्त गैसों के बादल

अदृश्य कलंकों का आभास एक अन्य विधि से भी मिलता है। सूर्य कलंकों के आसपास तप्त गैसों के बादल रहते ही हैं। इन्हें फैक्यूले (faculae) कहते हैं। कलंकों के प्रकट होने से पहले भी स्थल विशेष पर ये बादल देखे जाते हैं। इस प्रकार ये आगामी कलंकों की सूचना दे देते हैं। सूर्य कलंक लुप्त होते हैं, तब भी फैक्यूले कुछ देर तक बने रहते हैं। इनका रूप और तेजस्विता प्रायः कलंकों के विकास को प्रकट करते हैं।

सौर वह्नियाँ

प्राचीन काल से हम सूर्य को आग का गोला कहते आये हैं, परन्तु दूरदर्शी द्वारा देखने पर इसमें से यज्ञ-कुण्ड की तरह ज्वालाएँ नहीं निकलतीं। कुछेक शिखाएँ अवश्य आग की लपटों जैसी हैं। सूर्य कलंक तथा अन्यान्य क्रियाएँ दो विशेष कारणों से पैदा होती हैं—सूर्य का उच्च ताप और ध्रुवों पर तथा मध्य में सूर्य की भ्रमण-गति में अन्तर। उच्च ताप के कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य के तत्त्व तरल अथवा गैस रूप में रहते हैं और परिभ्रमण-गति का अन्तर उनमें बवण्डर पैदा कर देता है। गैस-स्वरूप तत्त्वों में स्वच्छन्द इलेक्ट्रान के भी अम्बार होते हैं, जो वर्तुल गति के कारण चुम्बकत्व के विशाल क्षेत्रों को जन्म देते हैं। वे क्षेत्र ही सूर्य के विभिन्न विकारों के आकार हैं।

जिस प्रकार पृथ्वी के वायुमण्डल में बादलों से विद्युत पैदा होती है, जिसकी कौंध मीलों तक दिखाई देती है, उसी प्रकार सूर्य-मंडल में ये व्यापार विशाल पैमाने पर होते हैं। वहाँ सूर्य कलंकों के विद्युत-क्षेत्रों से जो कौंध पैदा होती है, उसे सवा नौ करोड़ मील की दूरी से, अपनी पृथ्वी पर, दूरदर्शी द्वारा अच्छी तरह देखा जा सकता है। इन सौर वह्नियों (Solar flares) का हमारी पृथ्वी पर काफी प्रभाव पड़ता है। विशेषत: दूर देशों के रेडियो प्रोग्राम सुनने में कठिनाई होती है। वास्तव में ये प्रोग्राम क्षुद्र-तरंगों पर प्रसारित किये जाते हैं, जो अपने लक्ष्य पर पहुँचने से पहले वायुमण्डल की कुछ परतों से गुजरते हैं। सौर वह्नियों से

सूर्य का प्रभामण्डल

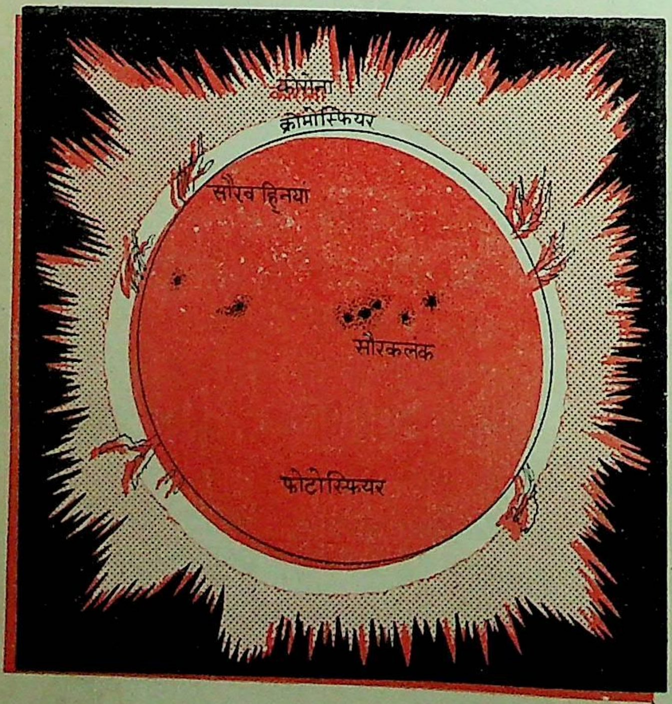

प्रसारित विशेष प्रकार के कण कुछ [घण्टों] से लेकर ४८ घण्टों तक पृथ्वी पर पहुँ[चकर] परतों में गड़बड़ पैदा करते हैं। फलत: [रेडियो] पर प्रोग्राम सुनना कठिन हो जाता [है।] अमरीका, फ्रांस, रूस, जर्मनी, इं[ग्लैंड,] जापान और इटली में इन वह्नियों के [चित्र] लेने के स्वचालित कैमरे लगे हुए हैं। [इन] संग्रहीत विवरणों का विश्लेषण अन्तररा[ष्ट्रीय] स्तर पर किया जाता है।

उज्ज्वालाएँ

जब सूर्य के घूमने के कारण सूर्य[कलंक] बिम्ब के एक सिरे पर पहुँच जाते हैं [तो] दूरदर्शी द्वारा देखने पर उनके ऊपर [कुछ] लाल रंग की ज्वालाएँ दिखाई देती हैं। [ये] विशाल ज्वालाएँ उज्ज्वालाएँ (pro[mi]nences) कहलाती हैं।

सूर्य के घूमने के साथ जब ये [सूर्य की] पृष्ठभूमि पर दिखाई देती हैं तब [इनका] रूप बिलकुल बदल जाता है। अन्तरि[क्ष की] धूमिल पृष्ठभूमि पर लाल दिखाई देने [वाली] उज्ज्वालाएँ सूर्य की चमकीली पृष्ठभू[मि पर] लम्बे, पतले सर्पों-सी लगती हैं। बहुत [समय] तक दोनों को अलग-अलग [समझा] जाता था और उन्हें [तंतुओं] (filaments) का नाम [दिया] गया था। जब इन तंतुकों को [ठीक] समझने के लिए इनका सूर्य के [...] तक अवलोकन किया गया तब [भ्रम] दूर हुआ।

ये उज्ज्वालाएँ प्राय: [सूर्य] कलंकों के क्षेत्र में ही देखी जा[ती हैं।] उज्ज्वाला का आकार बदल[ता] रहता है। विकास के दौ[रान] इसकी मोटाई में खास फ[र्क नहीं] पड़ता। ऊँचाई भी उतनी ही [रहती] है, पर लम्बाई बढ़ती जा[ती है।] कभी-कभी उज्ज्वाला विक[...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

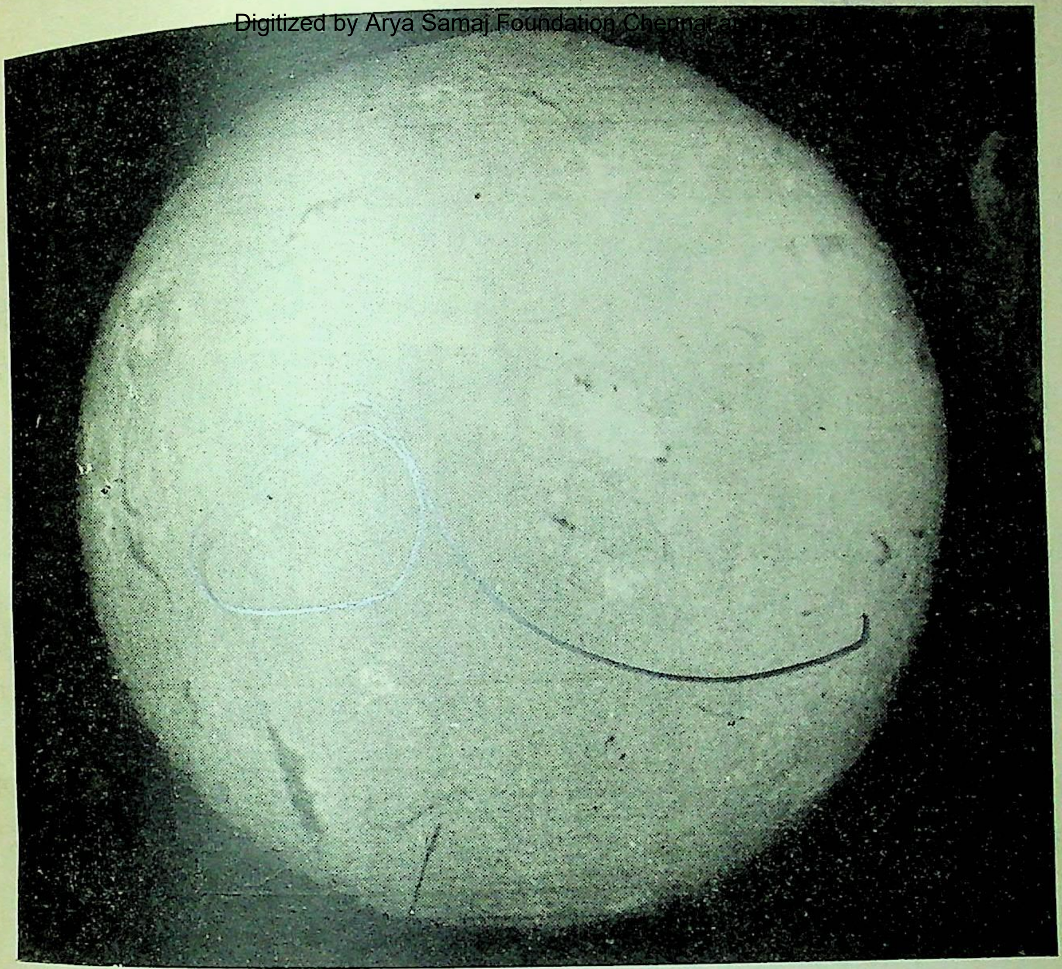

उठती है और कुछ ही घण्टे बाद उछल कर तीव्र वेग से (२४ लाख कि.मी. प्रति घण्टा तक) अन्तरिक्ष में लीन हो जाती है। कुछ दिन बाद उसके स्थान पर नयी उज्ज्वाला बननी प्रारम्भ हो जाती है। कभी-कभी अन्तरिक्ष में लीन होने की अपेक्षा वही उज्ज्वाला पुनः सूर्य में घुल-मिल जाती है।

उज्ज्वालाओं का पथ प्रायः शृंगाकार होता है। अनुमान है कि यह पथ कलंकों के बीच चुम्बकीय बल-रेखाओं का अनुकरण करता है। उज्ज्वालाओं का यह आकार-भेद तथा विकलता आदि चुम्बकीय क्षेत्र में होते रहने वाले परिवर्तनों के सूचक हैं।

सौर-किरीट

सूर्य के सिरे के निकट की लाल उज्ज्वालाओं का रूप उस समय विलक्षण होता है, जब पूर्ण ग्रहण के कारण सूर्य का बिम्ब काला हो जाता है। ऐसे समय सूर्य का एक दूसरा प्रभा-रूप भी दिखाई देता है जिसे सौर किरीट (corona) कहते हैं। यह सूर्य के चारों ओर प्रकाश-चक्र सा दीखता है। सूर्य का यह अंग अत्यन्त भव्य होते हुए भी इतना क्षीण है कि विशेष शक्तिशाली यन्त्रों द्वारा अथवा पूर्ण सूर्य ग्रहण पर ही देखा जा सकता है।

परिस्थिति के अनुसार और प्रायः सूर्य कलंकों की संख्या के अनुसार ही किरीट अपना रूप बदलता रहता है। इसी की पृष्ठभूमि पर उज्ज्वालाएँ प्रकट होती हैं। माना जाता है कि वे किरीट के पदार्थ से ही पैदा होती हैं, क्योंकि उनके निकट किरीट अत्यन्त क्षीण दिखता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

निकट से देखने पर Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
सूर्य-मण्डल पर अनेक विकार दिखाई देते हैं। ये विकार ११ वर्षीय चक्र के साथ-साथ कम या तीव्र होते रहते हैं। नंगी आँखों से देखे गये कलंक तो सूर्य के उज्ज्वल मुख पर काले तिल से लगते हैं पर उन्हीं को शक्तिशाली दूरदर्शी से देखा जाए तो विशेष प्रकार की बनावट प्रकट होती है। सूर्य कलंक के बीचोबीच गहरा काला भाग होता है जिसे प्रच्छाया (umbra) कहते हैं। उसके चारों ओर का भाग कम गहरा होता है। उसे उपच्छाया (penumbra) कहते हैं। छोटे से छोटा सूर्य कलंक तो कुछ सौ कि.मी. व्यास का होता है, किन्तु बड़े कलंकों में से अनेक तो पृथ्वी से भी क होते हैं। सबसे बड़ा कलंक १९४७ में प्रक हुआ था। तब अनुमान लगाया गया था कि उसमें १०० पृथ्वियाँ समा सकती थीं!

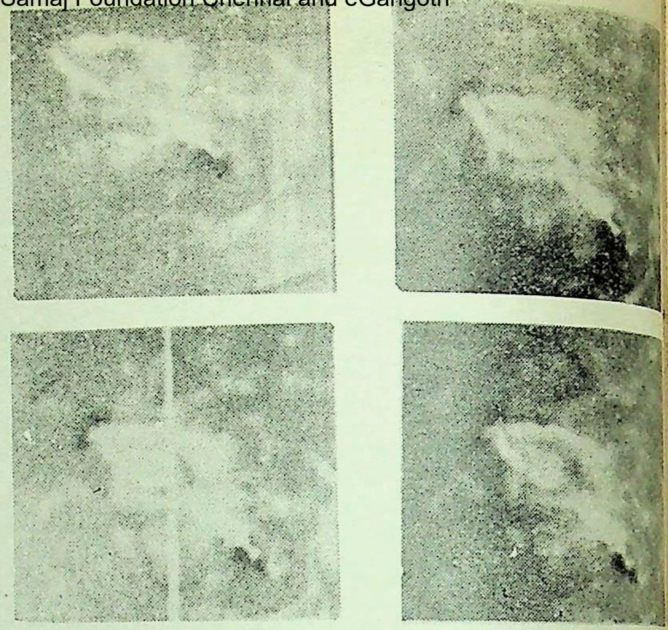

समाचार पत्र पंजीयन (केन्द्रीय) कानून, १९५६ के आठवें नियम के साथ पढ़ी जाने वाली प्रेस तथा पुस्तक-पंजीयन कानून की धारा १९ 'डी' उपधारा 'बी' के अन्तर्गत अपेक्षित 'विज्ञान-लोक' नामक समाचार-पत्र से सम्बन्धित स्वामित्व और अन्य बातों का ब्यौरा—

प्रपत्र ४

१. प्रकाशन का स्थान :	आगरा
२. प्रकाशन की आवर्तिता :	मासिक
३. मुद्रक का नाम :	जगदीश मेहरा
राष्ट्रीयता :	भारतीय
पता :	हॉस्पिटल रोड, आगरा
४. प्रकाशक का नाम :	जगदीश मेहरा
राष्ट्रीयता :	भारतीय
पता :	हॉस्पिटल रोड, आगरा
५. संपादक का नाम :	शंकर मेहरा
राष्ट्रीयता :	भारतीय
पता :	हॉस्पिटल रोड, आगरा
६. कुल पूँजी के एक से अधिक शेयर वाले भागीदार :	श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

मैं, जगदीश मेहरा, घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सही हैं।

दिनांक : २८ फरवरी, १९६३

जगदीश मेहरा
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्यारे बच्चो,

इस बार अहमदाबाद के तुम्हारे पाठक-मित्रों में से ठाकर्स हाई स्कूल के विद्यार्थियों ने एक महत्त्वपूर्ण विवरण भेजा है। आशा है, तुम सब के लिए वह प्रेरक रहेगा।

लिखा है, विगत दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में हैदराबाद में एक विज्ञान-स्पर्द्धा का आयोजन किया गया था। केन्द्रीय सांस्कृतिक मंत्री श्री हुमायूँ कबीर द्वारा उद्घाटित अखिल भारतीय शिक्षक मण्डल के सातवें वार्षिक अधिवेशन के अन्तर्गत वह आयोजन था। विज्ञान-स्पर्द्धा में सामूहिक रूप से इस स्कूल को प्रथम पुरस्कार तथा वैयक्तिक रूप से भी अनेक उच्च पुरस्कार इसी स्कूल के छात्रों को मिले हैं।

स्कूल के आचार्य के कुशल निर्देशन में ११वीं श्रेणी के रसिकभाई पटेल को प्रथम पुरस्कार मिला है जिसने बहु उद्देशीय पम्प, फ्यूजवाहक हीटर तथा स्वेटर बुनने के यंत्रों का निर्माण और सफल प्रदर्शन किया। इसी स्कूल से सम्बन्धित प्रकाश कालेज के प्रो. प्रह्लादभाई पटेल को भी अक्षांश-देशांश सिखाने वाले 'पीलोला' गोले के लिए पुरस्कार मिला है। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक नूतन प्रयोगों में से परिवहन का इतिहास, सैन्य व्यूह रचना तथा शस्त्रास्त्रों के सफल प्रदर्शन खिलौनों-माडलों द्वारा किये गये थे।

ये उपलब्धियाँ विशेष रूप से अभिनंदनीय हैं। अन्य अनेक पाठक बन्धु भी ऐसे छुट-पुट प्रयास करते रहते हैं। यह उनके पत्रों से जब-तब ज्ञात होता है। क्या वे भी अपने निर्माणों को कुशल निरीक्षण के अन्तर्गत शुद्ध वैज्ञानिक स्वरूप देकर यह दिखाना न चाहेंगे कि निर्माण किसी व्यक्ति, समाज अथवा देश विशेष का एकाधिकार नहीं?

सस्नेह तुम्हारी

कृष्णा दीदी

प्रतियोगिता संख्या ३६ के विजेता

प्रथम पुरस्कार

विजय (२४०) आगरा, सुधीरकुमार राठौर (१६१९) आगरा, गोपाल माधव (२३७९) मेरठ, बृजेश्वर शर्मा (३९७२) ललितपुर, प्रदीपकुमार (४१३५) इलाहाबाद, गोपी शाहानी (८४८६) राँची।

द्वितीय पुरस्कार

चाँदस्वरूप कपूर (५३८) आगरा, अरविन्द राणा (२६०९) कुरुक्षेत्र, मदनलाल कपूर (२८३३) कुरुक्षेत्र, जगदीशपाल पुरी (३२६४) कुरुक्षेत्र, सुशीलप्रकाश (३२९४) कुरुक्षेत्र, आनन्दनारायण (७५७२) बिलासपुर, मोहिनी शाहानी (७८२७) राँची, गोपालसहाय (९३७४) बेगूसराय।

तृतीय पुरस्कार

अरुणकुमार जाजू (१७) कानपुर, रमेशदत्त (१०७०) जबलपुर, अशोक गुप्ता (२७०१) लखनऊ, आनन्दनारायण श्रीवास्तव (२५२७) लखनऊ, विजयकुमार (३२२३) बलरामपुर, संजय गुप्ता (३४६७) लखनऊ, गोपालराव (५१७२) सोनेगाँव, देवेन्द्रकुमार (६१४३) मेरठ, शान्तिलाल (६४७४) उदयपुर, दिलीपकुमार (६७३२) बम्बई, धरमीचन्द (७२५६) अजमेर, वीरेन्द्रप्रताप (७३०५) इलाहाबाद, सज्जनसिंह (७६८५) उदयपुर, शोभाराम (८०४८) तुमसर, बृजनिश शाह (८१५६) सोनगढ़, अशोककुमार (८४०४) बम्बई, आदित्यकुमार (८६२०) जबलपुर, हरिवल्लभ (८८४५) खंभालिया।

कूपन : प्रतियोगिता संख्या ३८

नाम ....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

विज्ञान क्लब के नये सदस्य

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याहया हाजी
(स. सं. ३८४४)

श्यामसुन्दर
(स. सं. ३९९३)

आशिषकुमार
(स. सं. ४१३४)

जोरावरसिंह
(स. सं. ४२०५)

प्रेमचन्द्र
(स. सं. ४९१६)

५७१६ परमेश्वर शरण (१५) गया, १७ पुरुषोत्तम (१५) खरगोन, १८ गोपालदास (१६) कलकत्ता, १९ बल्देव प्रसाद (१५) पीलीभीत, २० सुभाष (१४) मोतीनगर, २१ रमेशकुमार (१७) लुधियाना, २२ रामराज्य (१५) ब्यावर, २३ विष्णु भगवान (१६) रामनगर, २४ राजेन्द्र प्रसाद (१२) पूर्णियाँ, २५ राजेन्द्रसिंह (१२) लश्कर, २६ जीतेन्द्रनाथ (१६) लुधियाना, २७ फेलिक्स जूवेल (१४) राँची, २८ ज्ञानचन्द (१८) सागर, २९ नामदेव (१५) अकोला, ३० अरुण कुमार (१५) हिवरखेड़ा, ३१ कु. स्नेहलता (१६) आसींद, ३२ अयोध्या प्रसाद (१५) कानपुर, ३३ उमानाथ (१५) तेलिया कलाँ, ३४ रामकृष्ण (१६) मुबारकपुर, ३५ शहीद (१९) शाजापुर, ३६ हनुमान सिंह (१९) कोटा, ३७ वीरेन्द्र सिंह (११) आगरा, ३८ दिलबहादुर (१३) डिगबोई, ३९ कु. उषा (१०) बीकानेर, ४० राधेप्रसाद (१५) कटिहार, ४१ तिलकराज (१७) सागर, ४२ महावीर प्रसाद (१५) जमशेदपुर, ४३ रामबाबू (१५) अलवर, ४४ अर्जुन कुमार (१३) नूरसराय, ४५ भागचन्द (१२) जोधपुर, ४६ विजय कुमार (१६) कटनी, ४७ सत्येन्द्रनाथ (१६) तीलरा, ४८ सुदर्शन (१५) कानपुर, ४९ केवलराम (२१) जोधपुर, ५० श्यामसुन्दर (१६) बहराइच, ५१ श्यामकुमार (१५) गोरखपुर, ५२ आत्माराम (१६) ग्रामभारती, ५३ ओमप्रकाश (१४) लश्कर, ५४ राजकिशोर (१९) गौहाटी, ५५ देवकिशन (१३) इन्दौर, ५६ पुरुषोत्तम (१४) नासिक, ५७ अजय कुमार (१२) सरता, ५८ रामानुज प्रसाद (१६) गया, ५९ तारणी प्रसाद (९) शाहाबाद, ६० सतीशकुमार (१५) नासिक, ६१ सुभाषचन्द्र (१७) नासिक, ६२ अयोध्या (१५) तीलरा, ६३ युगेश्वर राम (१५) पलामूं, ६४ नवलकिशोर (१५) राँची, ६५ विनोद कुमार (१४) राँची, ६६ इन्द्रसेन (१७) लश्कर, ६७ लक्ष्मीनारायण (१४) ब्यावर, ६८ गोपालकृष्ण (७) ब्यावर, ६९ कुमारी प्रियम्बदा (१४) गोहनूरी, ७० अरुण स्वरूप (१०) वाराणसी, ७१ आदित्य स्वरूप (१३) वाराणसी, ७२ महादेवराव (१७) बोड़खी, ७३ कु. बचनकौर (१६) एकतियासाल, ७४ श्यामाकान्त (१५) चम्पारन, ७५ पारसमल (१२) ब्यावर, ७६ धीरेन्द्रनाथ (१६) चक्रधरपुर, ७७ राजकिशोर (१५) इलाहाबाद, ७८ शतीन्द्रनाथ (१३) गया, ७९ ओमप्रकाश (१७) दूधवाखरा, ८० रमाकान्त (१४) प्रयाग, ८१ नारायण (१५) बम्बई, ८२ बुचुनजी (९) असनी, ८३ पूरनलाल (१७) मेरठ, ८४ वेदानन्द (१२) नेतरहाट, ८५ सरशचन्द (१५) राजनन्दगाँव, ८६ परमानन्द (१४) जमशेदपुर, ८७ अजयकुमार (११) शिकोहाबाद, ८८ कौस्तुभानन्द (१३) मेरठ, ८९ निर्मलकुमार (१२) विहिया, ९० अरुणकुमार (१३) लखनऊ, ९१ हेमनाथ सिंह (१०) दरभंगा, ९२ अभिराम (२२) नयागाँव, ९३ कृष्णेश्वर (२२) नयागाँव, ९४ गुलामअब्बास (१४) रायपुर, ९५ सत्यप्रकाश (१३) ब्यावर, ९६ सुरेशचन्द्र (१३) हातोद, ९७ कृष्णकुमार (१६) हरद्वार, ९८ देवलराम (१७) हरद्वार, ९९ रामनन्दन (१४) पंडितगंज, ५८०० भुवनेशचन्द्र (१३) चूरू, १ मुरारीलाल (१६) कलकत्ता, २ महेन्द्रकुमार (१७) जबलपुर, ३ कृष्णदेव (१७) चाँदपीपर, ४ सूर्यनारायण (१६) दरभंगा, ५ शिवशंकर (१५) मोतिहारी, ६ दलपत (१८) रायपुर,

ओमप्रका
(स. सं. ५२

शशिकान
(स. सं. ५२

संघाराम
(स. सं. ५

रविमोह
(स. सं. ५

सत्येन्द्र
(स. सं. ५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगदीशप्रसाद
(स. सं. ५५२४)

कृष्णकिशोर
(स. सं. ५५४०)

गुलाम अब्बास
(स. सं. ५७६४)

सूर्यनारायण
(स. सं. ५८०४)

सुभाषचन्द्र
(स. सं. ५८३६)

७ हफीज मोहम्मद (१६) आसींद, ८ कालूराम (१७) ब्यावर, ९ आर. ए. वेंकटरामन (१२) जमशेदपुर, १० पुरुषोत्तमदास (१४) लुधियाना, ११ दयानन्द (१४) जमशेदपुर, १२ थामस कुरियन (१५) इटारसी, १३ मोहन धुरी (१५) राँची, १४ रमेशचन्द्र (१४) श्योपुरकलां, १५ कु. रेणुबाला (१५) मोतिहारी, १६ लोकेश (१३) गया, १७ मदनगोपाल (१५) दिल्ली, १८ राजेन्द्र-कुमार (१५) नई दिल्ली, १९ पदमचन्द (१६) झुंझनूं, २० नरेन्द्रकुमार (१५) डिग्घी, २१ प्रभूजी (१७) थराद, २२ सुरेन्द्रकुमार (१८) कुल्हड़िया, २३ शंभूभाई बी. पटेल (१५) मालपरा, २४ जीवाभाई जे. विराणी (१४) मालपरा, २५ ओंकारनाथ (१६) ढखवा बाजार, २६ जगन्नाथ (१५) भगवानपुर, २७ रामचन्द्र (१५) सहजनवाँ, २८ अरुणकुमार (१४) मुजफ्फरपुर २९ प्रकाशचन्द्र (१६) खरगोन, ३० महेन्द्रमणि (१५) बैतालपुर, ३१ नवीनकुमार (७) वाराणसी, ३२ शिवानन्द (१३) मुजफ्फर-पुर, ३३ ओमप्रकाश (१४) चूरू, ३४ जुगराज (१३) चूरू, ३५ नन्दकिशोर प्रसाद (२०) बीरपुर, ३६ सुभाषचन्द्र (१६) आगरा, ३७ देवेन्द्रमोहन (१५) लुधियाना, ३८ योगेन्द्र नारायण (१३) बाँकीपुर, ३९ सुबीर कुमार (१५) राँची, ४० सी. विद्या-सागर (१३) वाराणसी, ४१ कृष्णचन्द (१४) लखनऊ, ४२ धनराज (१४) पटियाला, ४३ सुभाषचन्द्र (१६) दिल्ली, ४४ विजेन्द्रकुमार (१३) इलाहाबाद, ४५ श्रीप्रकाश (२०) झाँसी, ४६ प्रदीपकुमार (११) ललितपुर, ४७ आनन्दीलाल (१४) हरदा, ४८ सुशीलकुमार (१४) नई दिल्ली, ४९ शामकान्त (१५) चोपड़ा, ५० गुलाबचन्द (१६) छिन्दवाड़ा, ५१ राजेन्द्र प्रसाद (१३) समस्तीपुर, ५२ धीरजमल (१७) जबलपुर, ५३ जिनेश कुमार (१६) चिरमिरी, ५४ सुभाषचन्द्र (१३) बरेली, ५५ वीरेन्द्र (१८) नई दिल्ली, ५६ बृजकिशोर (८) सहसराम, ५७ इन्द्रसेन (१७) लश्कर, ५८ कु. सन्ध्या (१५) फारबिसगंज, ५९ सन्तोषकुमार (१३) फारबिसगंज, ६० भास्कर प्रकाश (१६) आगरा, ६१ जगदीशचन्द्र (१६) धार, ६२ दलगंजन (१६) बोहानी, ६३ अरुण कुमार (१४) माँझी, ६४ सुभाषचन्द्र (१४) तुलसीपुर, ६५ निशिकान्त (१६) पांजिपाड़ा, ६६ पारसनाथ (२०) गहमर, ६७ देवेन्द्रकुमार (१४) बरेली, ६८ खुशालचन्द्र (१४) कटनी, ६९ रामकिशन (१८) बाहरली, ७० रवीन्द्रस्वरूप (१५) बरेली, ७१ किशोरीलाल (१३) मुरादनगर, ७२ दुलीचन्द (१३) मुरादनगर, ७३ महेन्द्रकुमार (१३) उज्जैन, ७४ चयनसिंह (१७) जमशेदपुर, ७५ चन्दू धुमाल (१२) लश्कर, ७६ विजयकुमार (१५) जोधपुर, ७७ योगेन्द्र बहादुर (१४) मेहदावल, ७८ सत्येन्द्र कुमार (१४) कटनी, ७९ हरिनारायन (१९) नई दिल्ली, ८० नन्दकिशोर (१८) सूरत, ८१ कपिलदेव प्रसाद (१७) मुरगाँव, ८२ जगदीश (१७) दिल्ली, ८३ चन्दुंभाई (१४) तारापुर, ८४ आशीषकुमार (१०) वाराणसी, ८५ वीरेन्द्रकुमार (११) रून्नी सैदपुर, ८६ विद्यानन्द (१५) रतैठा, ८७ गौरीशंकर (१६) चौसाबाजार, ८८ यशपाल (१६) जबलपुर, ८९ सुभाषचन्द्र (११) देवरिया, ९० झूमरमल (१७) कुनौली बाजार, ९१ महेन्द्रपाल (१५) गोरखपुर, ९२ राजगृही राम (१७) रघुनाथपुर, ९३ दीपनारायण (१४) जामताड़ा, ९४ विजयकुमार (१६) लुधियाना, ९५ प्रेमकुमार (१६) जयपुर, ९६ सन्तोषकुमार (१३) नासिक, ९७ ओंकारसिंह (१३) सिवनी, ९८ कमलसिंह (१३) सिवनी।

रवीन्द्रस्वरूप
(स. सं. ५८७०)

उमाशंकर
(स. सं. ५९०८)

हरजिन्द्र
(स. सं. ५९४८)

विजयमल
(स. सं. ६२६९)

अशोककुमार
(स. सं. ६२७७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Мы изучили русский язык без учителя

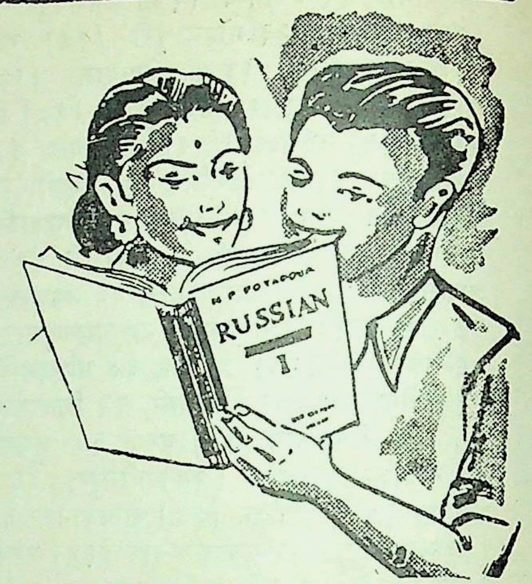

हम बिना शिक्षक के भी रूसी भाषा सीख गए।

जी हाँ, रूसी भाषा इतनी ही आसान है अगर आप मैडम पोटापोवा की प्रसिद्ध पुस्तक के दोनों भागों द्वारा सीखेंगे। मैडम पोटापोवा की पुस्तकें भाषा को आसान बनाकर आप को सीखने में सहायता देती हैं।

मूल्य हिन्दी संस्करण	अंग्रेजी संस्करण भी उपलब्ध हैं	
भाग १ : रु. २·१२	पहला भाग	मूल्य २
भाग २ : रु. २·७५	दूसरा भाग	मूल्य २·७५

रूसी भाषा पढ़ने के लिए हिन्दी में अन्य सहायक भी

हिन्दी-रूसी शब्दकोष (४००० शब्द) ६·
हिन्दी-रूसी बातचीत १·
रूसी-हिन्दी शब्दकोष (२३००० शब्द) ४·
रूसी-हिन्दी शब्दकोष (८००० शब्द) १·
रूसी व्याकरण की संक्षिप्त व्याख्या (लेखक इ. म. पुल्किना) २·

डाक व रजिस्ट्री-व्यय अतिरि

अपने पुस्तक-विक्रेता से लीजिए अथवा इनसे मँगाइए :

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लि. — रानी झाँसी रोड, नई दि
(शो-रूम : मेरिना आरकेड, कनाट सर्कस, नई दिल्ली)

नेशनल बुक एजेन्सी (प्रा.) लि. — १२-बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता-

पी. पी. एच. बुकस्टाल —१९०-बी. खेतवाड़ी, मेन रोड, बम्ब
(शो-रूम, प्रार्थना समाज, बम्बई-४ तथा कावसजी पटेल स्ट्रीट, बम्बई-१)

राजकमल प्रकाशन—दरियागंज, दिल्ली;
नया किताब-घर—एम. यू मार्केट, अलीगढ़
आत्माराम एण्ड सन्स—काश्मीरी गेट, दिल्ली
एस. चन्द एण्ड कम्पनी—फव्वारा, दिल्ली

पीपुल्स बुक हाउस—२७८–७९, लक्ष्मी रोड
पीपुल्स बुक हाउस—प्रार्थना समाज, अहमदा
पीपुल्स बुक हाउस—ग्राण्ड होटल बिल्डिंग,
पीपुल्स बुक हाउस—बी. एच. यू. गेट, वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

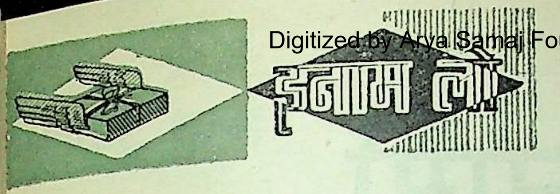

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ३८

प्रथम पुरस्कार	२५ रु. की पुस्तकें
द्वितीय पुरस्कार	२० रु. की पुस्तकें
तृतीय पुरस्कार	१५ रु. की पुस्तकें

अन्तिम तिथि : ३१ मार्च

इस प्रतियोगिता में केवल विज्ञान क्लब के सदस्य भाग ले सकते हैं। प्रतियोगिता में भाग लेने का कोई शुल्क नहीं है। नीचे दिये हुए प्रश्नों के उत्तर अलग कागज पर स्याही से साफ-साफ लिखकर पृष्ठ ५७ पर छपे कूपन के साथ लिफाफे में बन्द कर इस पते पर भेज दो :

कृष्णा दीदी, संचालिका, विज्ञान क्लब, विज्ञान-लोक, आगरा

लिफाफे पर 'विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ३८ का उत्तर' लिखना आवश्यक है। उत्तर ३१ मार्च तक उपरोक्त पते पर अवश्य पहुँच जाने चाहिए। बाद में आये उत्तरों पर विचार नहीं किया जाएगा।

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ३८ के प्रश्न

१. एशिया से बाहर, सबसे ऊँचा पर्वतशिखर कौन-सा, कहाँ, कितने मीटर ऊँचा है ?

२. लीनोटाइप का आविष्कार किसने, कब किया ?

३. मिट्टी के बिना पौधे उगाने की कला का वैज्ञानिक नाम क्या है ?

४. सर्वप्रथम किस वैज्ञानिक ने अणु और परमाणु का स्पष्ट अन्तर प्रदर्शित किया ?

५. मगरमच्छ के अण्डे कौन से कर तैयार करता है ?

६. रेस का घोड़ा और शुतुरमुर्ग में कौन तेज दौड़ेगा ? दोनों का तीव्रतम वेग लगभग क्या है ?

७. सबसे कोमल वस्तु कौन-सी है जो छूने से पहले, नाम लेते ही टूट जाती है ?

८. फूल की पत्ती सूखने से पहले किस प्रकार हथौड़ी से चूर-चूर हो जाएगी ?

९. अमरीका की खोज सर्वप्रथम किसने की और कब ?

१०. स्वेज नहर पूरी करने का श्रेय किसको है और उसका उद्घाटन कब हुआ ?

प्रतियोगिता संख्या ३६ के प्रश्नों के उत्तर

१. ताप तथा शीत के प्रभाव से धातुओं के प्रसारण तथा संकोचन (expansion and contraction) के नियमानुसार लाल तप्त रिविटों को ऊपर-तले की प्लेटों के एक ही सीध में बने सूराखों में फिट कर देते हैं तो ठण्डे पड़ जाने पर वे संकुचित होकर प्लेटों को अधिकतम खिंचाव द्वारा सही रूप में जकड़े रहते हैं।

२. $Al_2O_3.2H_2O$ सूत्रयुक्त धातु के आक्साइड को Bauxite कहते हैं। इसी से अल्यूमिनियम बनाया जाता है। फ्रांस में आर्ले (Arles) के निकट ला-बास (Les Baux) नामक स्थान पर स्थित खानों से वह मूल धातु प्राप्त की जाती है। उसी पर Bauxite नाम पड़ा है।

३. किवी (Kiwi) जो न्यूजीलैण्ड में पाया जाता है। एमु (Emu), कैसोवरी (Cassowary), शुतुरमुर्ग (Ostrich) और रेही (Rhea) में भी यही विशेषता पायी जाती है।

४. पृथ्वी के उत्तर को नहीं, चुम्बकीय उत्तर को इंगित करती है जो पृथ्वी के उत्तर से लगभग ६०० किलोमीटर दूर है।

५. कुल छः गतियाँ हैं : १. अपनी धुरी पर, २. सूर्य के गिर्द, ३. पृथ्वी और चन्द्रमा के सम्मिलित गुरुत्वकेन्द्र के गिर्द, ४. अभिजित (वेगा) नक्षत्र की सीध में, ५. आकाशगंगा के गुरुत्वकेन्द्र के गिर्द तथा ६. इसके ध्रुवीय अक्ष का उत्तरी सिरा भी आकाश में २६०० वर्षों में एक वृत्ताकार चक्कर लगा लेता है।

६. मोनोट्रिमेटा (monotremeta) समूह का इकिड्ना (echidna) प्राणी जिसका प्रचलित नाम चींटीखोर (ant-eater) है। यह उत्तरी आस्ट्रेलिया तथा दक्षिणी अमरीका में अधिक पाया जाता है। प्रागैतिहासिक काल के इस समूह में केवल २-३ जातियाँ ही शेष बची हैं जिनमें से यह एक है।

७. ये खरगोश की भाँति एक रोयेंदार प्राणी के रोयें हैं। उत्तम कोटि के लेडीज फर कोट इन्हीं से बनाये जाते हैं।

८. शहर में मुख्य मार्ग से अलग, रोड़ों और पत्थरों से बनाया गया तंग मार्ग जिस पर से कोयले की ट्रालियाँ धकेलकर ले जायी जा सकें।

९. हेरवेल (Harewell) स्थित जेटा (Zeta) नामक परमाणु-विभंजक रीएक्टर के संस्थान में। पूरा नाम है—Zero Energy Thermonuclear Assembly.

१०. शुष्क और आर्द्र, दोनों बल्बयुक्त, स्लिंग साइक्रोमीटर (Sling Psychrometer) नामक यन्त्र द्वारा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़े इनामों
के लिए नये
प्रीमियम इनामी बाण्ड

हर मूल्य के बिके प्रति १ करोड़ रुपये के बाण्डों पर दोनों में से प्रत्येक निकासी (ड्रा) में इनाम इस प्रकार दिए जाएंगे :

१०० रु० वाले बाण्डों पर

१	इनाम		५०,००० रु०
२	इनाम	प्रत्येक	२५,००० रु० का
५	इनाम	प्रत्येक	१०,००० रु० का
१०	इनाम	प्रत्येक	५,००० रु० का
७५	इनाम	प्रत्येक	२,००० रु० का
१५०	इनाम	प्रत्येक	१,००० रु० का

कुल २४३ इनाम

५ रु० वाले बाण्डों पर

१	इनाम		१५,००० रु०
२	इनाम	प्रत्येक	१०,००० रु० का
१०	इनाम	प्रत्येक	५,००० रु० का
२५	इनाम	प्रत्येक	२,००० रु० का
२००	इनाम	प्रत्येक	१,००० रु० का
३३०	इनाम	प्रत्येक	५०० रु० का

कुल ५६८ इनाम

जिन लोगों के पास ये बाण्ड होंगे वे १९६४ में होने वाली इनामों की दो निकासियों में भाग लेने के हकदार होंगे।

अनबिके बाण्ड पर इनाम नहीं दिया जायगा।

५ वर्ष बाद बाण्ड के पकने पर १० प्रतिशत लाभ (प्रीमियम)।

इनाम की रकम और लाभ दोनों पर ही आयकर नहीं लगेगा।

प्रीमियम इनामी बाण्ड खरीदिये

भारत की रक्षा-शक्ति को सुदृढ़ कीजिये

राष्ट्रीय बचत संगठन

DA

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके प्रश्न

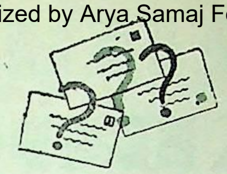

राजेन्द्रनाथ गोयल (५५६०) जयपुर

प्रश्न—वर्णान्धता क्या है, क्यों हो जाती है ?

उत्तर—इसे Achromatopsia अर्थात् कलर ब्लाइण्डनेस (colour blindness) कहते हैं। सामान्य अवस्था में तो इसका रोगी लाल, हरे और पीले में भेद नहीं जान पाता। रोग बढ़ने पर सभी कुछ भूरा ही भूरा दिखायी पड़ता है। नेत्रपटल की संरचना में तथा मस्तिष्क की दृष्टिवाहक तन्तु-व्यवस्था में विकृति आ जाने से यह रोग उत्पन्न हो जाता है। इसके लिए कुशल नेत्र-सर्जन की सहायता लेनी चाहिए।

रेवाशंकर भट्ट (५१८५) खडगदा

प्रश्न—यूरेनियम का हीलियम में परिवर्तित होना क्या सिद्ध करता है ?

उत्तर—भू-वेत्ताओं तथा भू-रसायनज्ञों का यह प्रिय विषय है। भूमिगत तत्त्वों के अणु-परमाणु निश्चित क्रम पूर्वक विभिन्न पदार्थों में परिवर्तित होते रहते हैं और उस क्रम में किंचित् भी अन्तर नहीं पड़ता। इसी आधार पर पृथ्वी की आयु का तथा प्रत्येक तत्त्व का निर्माण-काल निर्धारित किया जाता है। रीएक्टर जैसे अनेक जटिल यन्त्रों द्वारा यह कार्य सम्पन्न किया जाता है।

शशिकान्त श्रीवास्तव (५९५८) फीरोजाबाद

प्रश्न—इन्द्रधनुष अर्द्धगोल ही क्यों दिखता है ? पूर्ण गोलाकार दिख सकता है क्या ?

उत्तर—गोलाकार सूर्य की ही तो रश्मियों का आवर्तन होता है यह ! पृथ्वी के अनुपात में हमारी दृष्टि अत्यन्त सीमित होने के कारण पूर्ण गोलाकार नहीं दिखता। हाँ, पहाड़ की चोटी पर, खुले क्षितिज की ओर पड़ता हो तो गोलाकार अवश्य दिखेगा।

चिमनलाल हंसराजभाई (८९०८) नांदेड

प्रश्न—एन्टीसेप्टिक सर्जरी का प्रारम्भ किसने किया ?

उत्तर—ब्रिटिश सर्जन लार्ड लिस्टर (Lord Lister) ने।

सुशीला चौधरी (७२३१) रांची

प्रश्न—किसी एक ही प्राणी में दाँतों की संख्या सैकड़ों तक पहुँच सकती है क्या ?

उत्तर—सैकड़ों की क्या बात, हजारों तक भी पहुँचती है ! पोखरों, तालाबों में पाये जाने वाले सामान्य घोंघे के मुँह में १४१७५ दाँत होते हैं !

किशनलाल गोयल (६३१४) रायगढ़

प्रश्न—लेविसाइट (lewisite) क्या है ? इसका सर्वप्रथम प्रयोग कब किया गया ?

उत्तर—मस्टर्ड गैस की भाँति ही युद्धोपयोगी जहरीली गैस है। प्रथम विश्व-युद्ध के मध्यकाल में, सर्वप्रथम जर्मनी ने इसका प्रयोग किया था।

रवीन्द्रकुमार मेहरा (३८४७) अजमेर

प्रश्न—सीपियों से विविध खिलौने बनाने के लिए कौनसा मसाला काम में लाया जाए जो उन्हें मजबूती से चिपका सके ?

उत्तर—रबर साल्यूशन जैसा कोई भी बढ़िया पेस्ट काम दे जाएगा।

नत्थूलाल शर्मा (२४६८) बिसौली

प्रश्न—राइफल से छूटी गोली का वेग क्या होगा ?

उत्तर—राइफल से छूटते समय उसका वेग २६४० कि.मी. प्रति घण्टा से भी अधिक होता है, किन्तु उसी अनुपात में वायु-अवरोध भी काम करता है। अतः प्रायः ७४० मीटर प्रति सेकण्ड के वेग से प्रथम सेकण्ड में केवल ५५० मीटर तय करती है, दूसरे सेकण्ड में ३७० और तीसरे में केवल २७० ही। करीब दो मील के फासले पर यों जा गिरेगी मानो जेब से टपक पड़ी हो !

चन्द्रेशचन्द्र (४१२) करगी रोड

प्रश्न—कभी-कभी नाक से रक्त क्यों बहने लगता है ? ऐसी अवस्था में क्या करना चाहिए ?

उत्तर—इसके कई कारण हैं। तात्कालिक कारण चोट जैसा भी हो सकता है। इसके अतिरिक्त प्रायः रक्त की शिथिलता तथा जननांगों के रोग भी यह लक्षण प्रकट करते हैं। बहता रक्त रोकने के लिए चेहरे तथा गर्दन के पीछे पृष्ठ भाग पर ठण्डे पानी के छींटे देने चाहिए। फिर भी बन्द न हो तो हलका हाइड्रोजन पराक्साइड सुंघाना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ENGLISH WORKBOOK

- A Modern Course for Writing as well as Reading through the medium of Hindi.
- The Course provides exercises in spelling, punctuation, very simple grammar, sentence-structure, picture-composition, story-writing, cross-word puzzles, letter-writing and comprehension.
- The exercises are fresh and original, varied and interesting, and are carefully *graded*.
- An interesting technique is used to teach the young pupils how to write sentences correctly. They learn by doing, and by doing *correctly*.
- Exercises are so arranged that even slow children are sure to make *rapid progress*.
- Illustrations are given to attract the child's attention and to awaken his interest in the subject.
- The series is based upon a limited vocabulary of 1200 words.
- The workbooks are graded and are suitable for use in middle and high schools.

Book I........Price : 80 nP.
Book II........Price : Re.1·00
Book III........Price : Re.1·20

For further enquiries please write to :

SRI RAM MEHRA & Co.
Educational Publishers, AGRA

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णमुरारीप्रसाद (६१०८) धनौती

प्रश्न—पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के विरुद्ध पेड़-पौधों में ऊँची पत्तियों तक पानी कैसे पहुँच जाता है ?

उत्तर—जिसे पानी समझा जाता है, वह पौधे का जीवद्रव्य है, रस है। पौधे की जड़ों में घुले हुए द्रव्य और ऊपर से दिये गये पानी के घनत्व में अन्तर होने से रसाकर्षण (osmosis) क्रिया द्वारा रस सबसे ऊपर की फुनगी तक पहुँचता रहता है।

मेनालउद्दीन (७४८१) भागलपुर

प्रश्न—संगीत का प्राण, हारमोनियम का आविष्कार किसने किया ?

उत्तर—पेरिस के एलेक्जाण्डर डेबिन (Alexandre Debin) ने १९वीं शताब्दी में।

परमानन्द गुप्ता (६२३२) रायगढ़

प्रश्न—नाइट्रोमीटर किस काम आता है ?

उत्तर—कार्बनिक यौगिकों में नाइट्रोजन की मात्रा ज्ञात करने के लिए, विशेषतः ड्यूमा की सूचित विधि (Duma's Absolute Method) के अन्तर्गत अन्य उपकरणों के साथ काम आता है।

सतीशचन्द्र सिंह (६१५७) लखनऊ

प्रश्न—सर्कस का प्रारम्भ कब और कैसे हुआ ?

उत्तर—आज से २३०० वर्ष पहले ! ईसा से ४०० वर्ष पूर्व रोमन सम्राट् टारकिनिस (Tarquinis) ने अपनी विजय के उपलक्ष्य में घुड़दौड़ और मुक्केबाजी का सर्वप्रथम सार्वजनिक प्रदर्शन कराया था। तब से विजयपर्वों की राजसी परम्परा बहुत कुछ ऐसी ही चलती आई है। आधुनिक सर्कस का जन्मदाता घुड़सवारी का करिश्माकार फिलिप एश्ले (Philip Astley) माना जाता है जिसने १७७६ में लन्दन में सर्कस प्रदर्शन की नींव डाली थी।

उपेन्द्रमोहन (३५५९) मुजफ्फरपुर

प्रश्न—आँख के रेटिना पर उलटा बिम्ब पड़ता है फिर भी वस्तु हमें सीधी क्यों दिखती है ?

उत्तर—बिम्ब अवश्य उलटा पड़ता है किन्तु देखने का आभास पाना तो मस्तिष्क का काम है। अतः रेटिना से संयुक्त मस्तिष्क का तंत्रिका-तंत्र वस्तु के चित्र का संदेश सीधा करके ही मस्तिष्क तक पहुँचाता है।

बृजनन्दनप्रसाद (५५३०) राँची

प्रश्न—कार्बन मोनोक्साइड का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर—यह अत्यन्त जहरीली गैस है। चिमनियों और ज्वालामुखी की गैसों में तथा कोयले की खानों में यह अधिकता से पायी जाती है। १८०० में विलियम क्रूकशंक की घोषणा से पूर्व यह हाइड्रोजन ही समझी जाती थी क्योंकि ये दोनों गैसें नीली ज्वाला से जलती हैं। रक्तोष्ण कोक के ऊपर इसे हाइड्रोजन से संयुक्त करके प्रवाहित करने पर बहुमूल्य वाटर-गैस प्राप्त होती है जो बड़े उद्योगों में ईंधन का काम देती है।

रामदयाल शर्मा (४८७५) विदिशा

प्रश्न—६ अगस्त १९४५ विज्ञान के इतिहास में क्यों प्रसिद्ध है ?

उत्तर—हिरोशिमा पर एटम बम गिराने की वह निन्दनीय कहानी युग-युगों तक भुलायी जा सकेगी क्या, जिसमें उस महाकाल की सुबह ८। बजे चार मील के विस्तार में शहर के ३।। लाख निवासियों पर कयामत ढा दी गयी थी ? उनमें से आधे तो तत्क्षण ही समाप्त हो गये और शेष आधे मर-मरकर जीने के लिए रह गये।

प्रेमचन्द अग्रवाल (३७९७) गंगानगर

प्रश्न—मनुष्य पर आकाशीय बिजली किन कारणों से पड़ती है ? मनुष्य बिजली का सुचालक है फिर भी बिजली बिना हानि पहुँचाए सीधे ही धरती में प्रवेश क्यों नहीं कर जाती ?

उत्तर—आकाशीय विद्युत के समय ऊँचे वृक्ष या मीनार आदि के पास खड़े होने अथवा छाता खोले रहने से बिजली गिरने की सर्वाधिक संभावना रहती है। मनुष्य कैसा भी सुचालक हो, मन्द बैटरियों की धारा तो सह लेगा, किन्तु जब घरेलू बिजली का ही धक्का नहीं सह पाता तब आकाशीय बिजली की तो बात ही क्या ?

इस स्तम्भ के लिए प्रश्न पोस्ट कार्ड पर लिखकर कृष्णा दीदी के पते पर भेजिए। पोस्ट कार्ड पर प्रश्न तथा अपना नाम, पता और सदस्य संख्या के अतिरिक्त और कुछ न लिखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या अब भी कुछ करना है ?

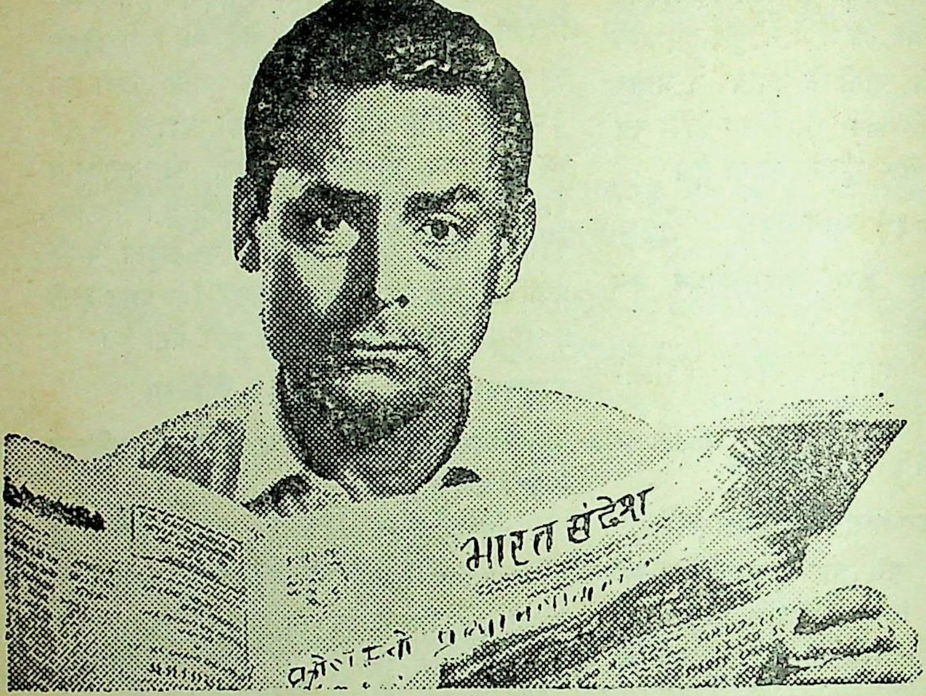

जी हां ! अब भी बहुत कुछ करना है । देश भर में अपूर्व एकता और असीम उत्साह की जो लहर फैली है, अपना लक्ष्य प्राप्त करने की जो दृढ़ता और प्रबल भावना जागृत हुई है, उसमें हमारी उदासीनता अथवा ढिलाई के कारण कोई कमी न आए, इसका हमें पक्का इंतजाम करना है । राष्ट्र के प्रति समर्पण, कर्तव्य-निष्ठा तथा अनुशासन से काम करने के दृढ़ निश्चय को हमें दोहराना है ।

- अनावश्यक खर्च बंद करें, ठाट-बाट छोड़ दें ।
- कुछ भी ज़ाया न करें—दफ्तर हो या घर, कहीं भी, किसी भी समय ।
- अपने काम पर डटे रहें, फुर्ती और कुशलता से पूरा किया गया हर काम राष्ट्र को अधिक सबल बनाता है ।
- अपना सोना राष्ट्र की सेवा में अर्पित करें, ढिलाई छोड़ें और मुस्तैदी से काम में जुटे रहें ।

चौकस रहें

–राष्ट्र की तैयारी में हाथ बटायें ।

DA

जगदीश मेहरा द्वारा दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा में मुद्रित एवं श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा के लिए प्र

[मुखपृष्ठ बृजवासी फाइन आर्ट ऑफसेट वर्क्स, मथुरा में मुद्रित]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीहारिका केवल २) में

तृतीय वर्ष प्रवेश के उपलक्ष्य में

नी हा रि का

की

नवीन आकर्षक योजना

- नीहारिका का वार्षिक शुल्क ७ रु. अर्थात् तीन वर्ष का २१ रु. है।

- इस योजना के अनुसार केवल १६ रु. भेजकर ही आप तीन वर्ष के लिए ग्राहक बन सकते हैं।

- इस योजना के अन्तर्गत आपको नीहारिका अप्रैल १९६३ से मार्च १९६६ तक भेजी जाएगी।

- इस प्रकार इस योजना के अन्तर्गत आपको नीहारिका के अप्रैल १९६५ से मार्च १९६६ तक के बारह अंक केवल २ रु. में प्राप्त होंगे।

- शुल्क भेजने की अन्तिम तिथि ३१ मार्च १९६३ है।

विक्रय व्यवस्थापक, नीहारिका, हास्पिटल रोड, आगरा
को आज ही मनीआर्डर द्वारा १६ रु. भेजकर इस योजना का लाभ उठाएँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

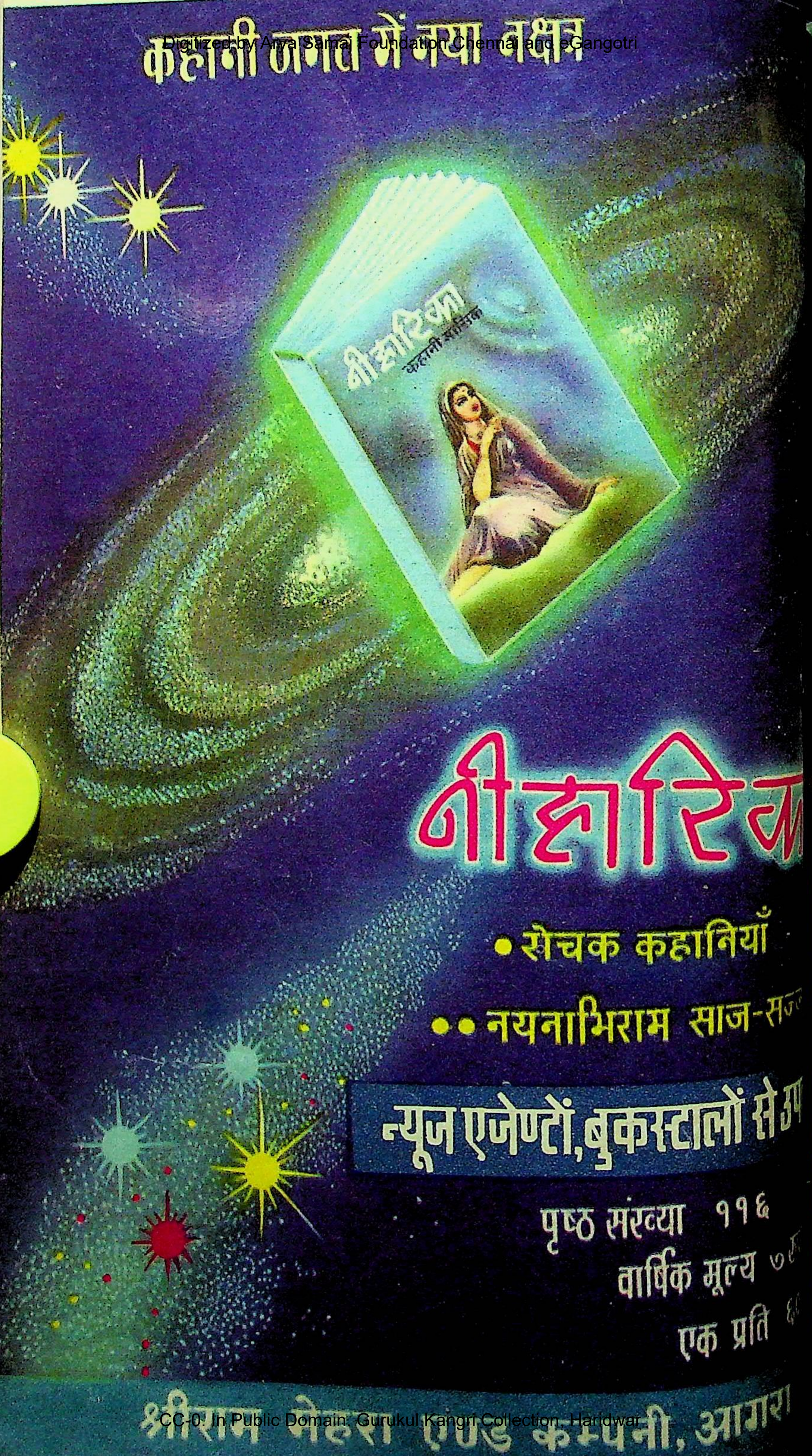

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar